शुकनासोपदेशः

(शब्दार्थ, अनुवाद, टिप्पणी)

डॉ॰ अर्चना त्यागी

शुकनासोपदेशः

(शब्दार्थ, अनुवाद, टिप्पणी)

डॉ० अर्चना त्यागी

विद्यानिधि प्रकाशन

दिल्ली

प्राक्कथन

दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में गद्य काव्य के अन्तर्गत 'शुकनासोपदेशः' का अध्ययन निर्धारित है। महाकवि बाण द्वारा रचित 'कादम्बरी' नामक अद्भुत ग्रन्थ का एक भाग होने के कारण शुकनासोपदेश के अनेक संस्करण उपलब्ध थे, परन्तु अध्ययन एवं अध्यापन के दौरान मुझे एक और ऐसे संस्करण की आवश्यकता अनुभव हुयी जिसमें बाण की जटिल शैली को छात्रों के लिए सरल ढंग से समझाया गया हो। इसी विषय से प्रेरणा लेकर यह क्षुद्र प्रयास मेरे द्वारा प्रभु की कृपा से किया गया। इसमें समस्त पदों के एक-एक भाग को अलग करके उसका अर्थ, सम्पूर्ण टीका, व्याकरणात्मक विशेषतायें, अलंकार आदि तथा विशेष टिप्पणियाँ भी दी गयीं हैं। भूमिका में परीक्षोपयोगी विषयों तथा बाण के जीवनकाल से संबंधित जानकारी दी गयी है। आशा है कि मेरा यह प्रयास छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

माँ सरस्वती की असीम अनुकम्पा, गुरुजनों के आशीर्वाद तथा मित्रों के सहयोग से ही यह कार्य पूर्ण हो सका। अनेक विपरीत परिस्थितियों के रहते हुए भी इस कार्य को पूरा करने में योगदान देने वाले सभी गुरुजनों एवं सहयोगियों तथा प्रकाशक यादव जी की मैं हृदय से आभारी हूँ।

भवदीया

अर्चना त्यागी

संकेत-सूची

ई०	–	इंस्वी
उप०	–	उपसर्ग
उ० पु०	–	उत्तम पुरुष
ए० व०	–	एक वचन
क० धा० स०	–	कर्मधारय समास
काद०	–	कादम्वरी
तत्पु०	–	तत्पुरुष समास
तृ० तत्पु०	–	तृतीया तत्पुरुष समास
द्व० स०	–	द्वन्द्व समास
द्वि० व०	–	द्विवचन
नपुं०	–	नपुंसकलिंग
प्र० पु०	–	प्रथम पुरुष
प्र० वि०	–	प्रथम विभक्ति
ब० व०	–	बहुवचन
बहु० स०	–	बहुव्रीहि समास
म० पु०	–	मध्यम पुरुष
लट् ल०	–	लट् लकार
ष०	–	षष्ठी
स० वि०	–	सप्तमी विभक्ति
सा० द०	–	साहित्यदर्पण
हर्ष०	–	हर्षचरित

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

संकेत सूची

विषयानुक्रमणिका

भूमिका 1 - 24

- बाण का स्थितिकाल 1
- बाण का जीवन-परिचय 1
- बाण की रचनाएं 3
- कादम्बरी शब्द की व्याख्या 5
- कादम्बरी का मूल कथास्रोत 5
- कथा एवं आख्यायिका 6
- भामह के अनुसार कथा की विशेषतायें 6
- हर्षचरित आख्यायिका तथा कादम्बरी कथा 7
- बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् 7
- महाकवि बाण की प्रशस्तियां 14
- गुरु के उपदेश का महत्त्व 16
- लक्ष्मी का स्वरूप 18
- राजाओं के चरित्र 21

शुकनासोपदेशः 25 - 137
(शब्दार्थ, अनुवाद, टिप्पणी)

परिशिष्ट 138
(शुकनासोपदेश में सूक्तियां)

सहायक ग्रन्थ-सूची 139

भूमिका

संस्कृत साहित्य के महान् गद्यकार बाणभट्ट के संबंध में कुछ भी लिखने में लेखनी असमर्थ सी हो जाती है। महाकवि बाण देवी सरस्वती के वरदपुत्र थे। उनके ऊपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की अत्यधिक कृपा थी। किसी भी कवि के काव्य के विषय में जानने के साथ ही साथ उनके जीवन के विषय में जानना भी अनिवार्य है।

बाण का स्थितिकाल

संस्कृत साहित्य के अधिकांश कवियों के स्थितिकाल के विषय में प्राय: प्रश्नचिह्न एवं विवाद देखने को मिलते हैं, परन्तु बाण उसका अपवाद हैं। क्योंकि बाण के काल निर्धारण के संबंध में अनेक ठोस प्रमाण उपलब्ध हैं। बाण महाराज हर्षवर्धन के सभापण्डित थे। हर्ष 606 ई० में स्थाणीश्वर के राजसिंहासन पर आसीन हुए थे और इसके कुछ ही समय पश्चात् बाण इनके आश्रय में आये थे। अत: बाण का स्थितिकाल छठी शताब्दी का उत्तरार्ध तथा सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही माना जा सकता है।

इस संबंध में एक और महत्त्वपूर्ण प्रमाण है चीनी यात्री ह्वेनसांग के संस्मरण, वे भारत में लगभग सोलह वर्ष रहे और उन्होंने अपनी भारत यात्रा के दौरान महाराज हर्षवर्धन का विस्तार से उल्लेख किया है। हर्षचरित में बाण ने एक ऐसी घटना की चर्चा की है जिसमें हर्ष ने अपनी समस्त सम्पत्ति ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को दे दी थी। ऐसे ही एक उत्सव का उल्लेख ह्वेनसाँग ने भी किया है। बाण की रचना 'हर्षचरित' के नायक यही हर्षवर्धन हैं जिनका राज्यकाल सन् 606 ई० से सन् 642 ई० तक रहा।

इनके अतिरिक्त और भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि महाकवि बाणभट्ट का स्थितिकाल ईसा की सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है तथा वे महाराज हर्षवर्धन के राज्य में एक सम्मानित कवि थे।

बाण का जीवन-परिचय

विश्व के आत्मकथा लिखने वाले साहित्यकारों में बाणभट्ट सर्वप्रमुख हैं। अपने जीवन के उज्ज्वल पक्ष को कहने वाले तो कुछ लोग रहे भी होंगे परन्तु

अपने अतीत के दुर्बल पक्ष एवं अपने दोषों को भी साहस के साथ कहने वाले बाणभट्ट ही थे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

बाण ने कादम्बरी की प्रस्तावना में संक्षेप में तथा हर्षचरित के प्रथम दो उच्छवासों में विस्तारपूर्वक अपने विषय में बताया है। बाण वत्सगोत्रीय थे। उनके पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। उनकी माता का देहावसान बाल्यकाल में ही हो गया था। उनके ब्राह्मणोचित संस्कार पिता ने किये और चौदह वर्ष की आयु में उनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। बाण ने अपने वंश का उद्भव सरस्वती देवी और वत्स से कहा है। पिता की मृत्यु के बाद बाण का कुछ समय तो शोक में व्यतीत हुआ। उनके घर में धन की कोई कमी न थी। उम्र के बहाव ने उन्हें उच्छृंखल बना दिया और उनके बहुत से साथी बन गये, जिनके साथ उन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण किया। उस काल में भी बाण यह अनुभव करते थे कि उन जैसे उच्च कुल में जन्मे व्यक्ति का सामान्य लोगों के साथ नाटक मण्डली में रहना उचित नहीं था। उन्होंने स्पष्ट किया है कि उनके घर में समृद्धि तथा अध्ययन-अध्यापन का वातावरण था, फिर भी यौवन के आगमन ने उन्हें स्वच्छंद एवं अनुशासनहीन बना दिया। इस दौरान संसार के अनुभवों से परिपक्व होकर वे घर लौटे। उन्होंने अपनी शूद्राविमाता के पुत्रों के साथ भी अत्यन्त स्नेह दिखाया है। तभी ग्रीष्मऋतु में एक दिन सम्राट हर्षवर्धन के चचेरे भाई कृष्ण का एक संदेशवाहक उनके पास आया, उसने कहा कि कुछ लोगों ने उनके विरुद्ध राजा को भड़का दिया है और इसलिए उन्हें जाकर राजा से मिलना चाहिए। तब एक लम्बी यात्रा तय करके वे राज दरबार में पहुँचे। समीप जाकर उन्होंने स्वस्ति वचन कहा। राजा ने पूछा– "यह वही बाण है?" द्वारपाल बोला– "वही है," राजा ने कहा– "महानयं भुजङ्गः"। परन्तु बाण ने बड़ी चतुराई से इस बात का उत्तर दिया। उस समय तो राजा विशेष प्रसन्न नहीं हुए परन्तु धीरे-धीरे वे राजा के कृपापात्र बन गये उनकी सभा के विद्वानों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। कुछ समय बाद वे फिर से प्रीतिकूट लौट गये।

कादम्बरी के उत्तर भाग से स्पष्ट है कि बाण के पुत्र ने उसका उत्तर भाग पूर्ण किया जिसका नाम भूषण है। कुछ लोग उसे पुलिन्द भट्ट या पुलिन भी कहते हैं। कुछ निचुल भी कहते हैं। अधिकांश विद्वान् इनका नाम भूषण भट्ट ही मानते हैं। भूषण की अपने पिता तथा उनके पांडित्य में पूर्ण आस्था थी। कुछ लोग एक किंवदन्ती के अनुसार बाण के दो पुत्रों के होने की बात कहते हैं परन्तु इस संबंध में कोई ठोस प्रमाण या विशेष उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

बाण की रचनाएं

संस्कृत साहित्य में बाण की अनेक रचनायें मानी जाती हैं जो इस प्रकार हैं- हर्षचरित, कादम्बरी, चण्डीशतक, पार्वती-परिणय। इनके अतिरिक्त- मुकुटताडितक, सर्वचरित, शारदाचन्द्रिका तथा पद्यकादम्बरी आदि। परन्तु इनमें से उपलब्ध बहुत कम हैं। साहित्यशास्त्र के ग्रंथों और सूक्ति-संग्रहों में बाण के नाम से अनेक सुन्दर श्लोक उद्धृत हैं,जो उनकी अब उपलब्ध रचनाओं में नहीं मिलते। अतः बाण ने संभवतः अनेक रचनायें लिखी होंगी।

पार्वती-परिणय नाटक की प्रस्तावना में इसे वत्सगोत्रज बाण की रचना कहा गया है। इस कारण काणे महोदय इसे कादम्बरी और हर्षचरित के रचयिता बाण की ही रचना मानते हैं, परन्तु प्रो॰ कीथ और कृष्णमाचार्य आदि विद्वान् यह सिद्ध कर चुके हैं कि इस नाटक की रचना वास्तव में वामनभट्ट बाण नाम के तैलंगदेशीय वत्सगोत्रज कवि ने की थी जो कि वेमभूपाल नामक राजा (ई॰15वीं शताब्दी) का राजकवि था। अन्य ग्रंथों के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बाण की उपलब्ध रचनाओं में कादम्बरी और हर्षचरित सर्वश्रेष्ठ हैं।

कादम्बरी और हर्षचरित की तुलना करने पर सरलता से ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हर्षचरित उनकी प्रारम्भिक रचना है और कादम्बरी परवर्ती क्योंकि शैली आदि की दृष्टि से उसमें प्रौढ़ता है। हर्षचरित संस्कृतसाहित्य की उपलब्ध आख्यायिकाओं में प्राचीनतम है। इसमें आठ उच्छवास हैं जिनके माध्यम से बाण ने अपने आश्रयदाता और तत्कालीन महान् राजा हर्ष के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का रोचक वर्णन किया है। प्रथम दो उच्छवासों तथा तीसरे उच्छवास के भी प्रारम्भिक कुछ भाग में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों तथा अपने जीवन के विषय में लिखा है।

कादम्बरी समस्त संस्कृत गद्य-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इनमें कादम्बरी तथा चन्द्रापीड और महाश्वेता तथा पुण्डरीक की प्रणय-कथा का वर्णन है। कादम्बरी की कथा संक्षेप में इस प्रकार है-

विदिशा के राजा शूद्रक की राजसभा में एक चाण्डाल कन्या एक अद्भुत तोते को लेकर आती है। यह तोता अपने जन्म से लेकर जाबालि मुनि के आश्रम में पहुँचने तक का वृत्तान्त कहता है। वहाँ आश्रम में जाबालि मुनि उस तोते को उसके पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं वह इस प्रकार है-

उज्जयिनी के राजा तारापीड तथा रानी विलासवती के यहाँ तप के परिणामस्वरूप एक पुत्र का जन्म हुआ। शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त चन्द्रापीड अपने साथी वैशम्पायन के साथ दिग्विजय के लिए गया। किन्नर-युगल का पीछा करते हुए वह अच्छोद सरोवर तक जा पहुँचा। वहाँ मधुर संगीत ध्वनि से आकृष्ट होकर वह उसके पीछे ही चल पड़ा। वहाँ एक शिवालय में वीणा-वादन करती हुयी महाश्वेता को उसने देखा। चन्द्रापीड के पूछने पर महाश्वेता अपने विषय में बताती है। महाश्वेता एक गन्धर्व राजकन्या थी। वह पुण्डरीक नामक एक तपस्वी के प्रति आकृष्ट हो गयी, परन्तु मिलन से पूर्व ही काम-पीड़ा से पुण्डरीक की मृत्यु हो गयी, तब फिर से मिलने की आशा से वह अच्छोद सरोवर के किनारे तपस्या करने लगी। महाश्वेता की प्रिय सखी कादम्बरी भी सखी प्रेम में उसी व्रत का पालन करने लगी। महाश्वेता से परिचय पाकर चन्द्रापीड कादम्बरी को देखता है। प्रथम दर्शन से ही दोनों परस्पर आकृष्ट हो जाते हैं। प्रणय-पूर्ति से पहले ही चन्द्रापीड उज्जयिनी लौट आता है और वैशम्पायन को भी अपने पीछे-पीछे आने को कहता है। यहाँ कादम्बरी का पूर्व-भाग समाप्त होता है।

वैशम्पायन के न लौटने पर चन्द्रापीड उसे ढूँढते हुए अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है। महाश्वेता उसे बताती है कि कैसे वैशम्पायन उस पर आसक्त हो गया और उसने शाप देकर उसे तोता बना दिया। यह सुनकर मित्रप्रेम में चन्द्रापीड भी प्राण त्याग देता है। तभी कादम्बरी वहाँ आती है और चन्द्रापीड के प्रेम में प्राण त्यागने को उद्यत होती है तभी एक आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है। यहीं जाबालि की कथा समाप्त होती है।

तब चाण्डाल कन्या राजा शूद्रक से कहती है कि मैं पुण्डरीक (जो उस जन्म का वैशम्पायन है) की माता लक्ष्मी हूँ। तब उस तोते और राजा शूद्रक के मिलने से शाप की समाप्ति होती है। राजा शूद्रक स्वयं पूर्व जन्म का चन्द्रापीड है जो कभी चन्द्रमा था और शाप के कारण पृथ्वी पर उसने जन्म लिया था। इतना कहकर लक्ष्मी ओझल हो जाती हैं और शूद्रक तथा तोते का भी शरीर त्याग हो जाता है। दूसरी ओर अच्छोद सरोवर के किनारे रखा हुआ चन्द्रापीड का मृत शरीर फिर से जीवित हो जाता है और पुण्डरीक भी आकाश से उतर आता है। पुण्डरीक-महाश्वेता और चन्द्रापीड-कादम्बरी का मिलन हो जाता है और ये प्रेमी-युगल सुख से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यह कादम्बरी का उत्तरार्द्ध है।

कादम्बरी भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से अत्युत्कृष्ट है। अतः उचित ही कहा गया है कि कादम्बरी का रसपान करने वालों को भोजन भी अच्छा नहीं लगता-

"कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।"

प्रस्तुत पुस्तक 'शुकनासोपदेश' इस कादम्बरी के पूर्वार्द्ध से संगृहीत एक प्रकरणमात्र है। इसमें चन्द्रापीड के पिता तारापीड के महामन्त्री शुकनास ने चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक के समय उसे अनेक प्रकार के उपदेशों के माध्यम से विद्वान्, ओजस्वी, उच्चकुलोत्पन्न, धैर्यशाली और परिश्रमी पुरुष को भी दुर्जन बना देने वाली लक्ष्मी से सदा सावधान रहने के लिए विशेष रूप से समझाया है।

कादम्बरी शब्द की व्याख्या

कादम्बरी गन्धर्वराज की पुत्री है। उसी को आधार बनाकर लिखी गयी कई जन्मों की प्रणय-कथा कादम्बरी कहलाती है। अथवा कादम्बरी मदिरा को कहते हैं। उसके समान मादक एवं आह्लादक होने के कारण इस कथा का नाम कादम्बरी रखा गया। कादम्बरी के उत्तरार्ध में बाण के पुत्र भूषण ने कहा भी है- **"कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।"** कादम्बरी शब्द की सिद्धि अनेक प्रकार से की गयी है यथा **"कदम्बस्य पुष्पं कदम्बं तेषां समूहः कादम्बं तत् राति लातीति आतोऽनुपसर्गे कः"** इति सूत्रेण क प्रत्ययः = कादम्बरम्, 'स्त्रियाम् षिद्गौरादिभ्यश्च' इति सूत्रेण ङीषि तु कादम्बरी।

कादम्बरी का मूल कथास्रोत

सोमदेवकृतकथासरित्सागर तथा क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी - ये दोनों गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा के संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तर हैं। बृहत्कथा अपने मूल रूप में अब उपलब्ध नहीं है। बाण ने संभवतः कादम्बरी के कथानक का मूल-स्रोत बृहत्कथा को बनाया है। कथासरित्सागर के मकरन्दिकोपाख्यान में दी गयी राजा सुमनस की कथा तथा कादम्बरी की कथा में अत्यधिक-साम्य है। बाण ने पात्रों एवं स्थानों के नाम परिवर्तित कर दिये हैं। बाण ने कुछ अतिरिक्त पात्रों की भी योजना कथाप्रवाह बनाये रखने के लिए की है। परन्तु इस सन्दर्भ में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का तर्क भी युक्तिसंगत ही है कि "कथासरित्सागर कादम्बरी की रचना के बाद का ग्रन्थ है, अतएव यह कहना कठिन है कि उसका कितना अंश मूल बृहत्कथा से लिया गया और कितना स्वयं कादम्बरी

के प्रभाव से उसमें आ गया।"

कथा एवं आख्यायिका

भामह के अनुसार आख्यायिका की विशेषतायें निम्नलिखित हैं:-

1. संस्कृत गद्य रूप में हो।
2. शब्द, अर्थ और पद-संघटना सरल और श्रव्य हों।
3. विषय उदात्त हो।
4. कथानक का विभाजन उच्छवासों में हो।
5. नायक अपने वृत्त का वर्णन स्वयं करे।
6. भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए समय-समय पर वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हो।
7. कवि अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए विशेष चिह्नों का प्रयोग करे। (जैसे भारवि ने सर्ग की समाप्ति वाले छन्द में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है और माघ ने श्री शब्द का)।
8. कन्याहरण, संग्राम, वियोग और उन्नति आदि का समन्वय हो।

भामह के अनुसार कथा की विशेषतायें इस प्रकार हैं-

1. वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग न हो।
2. उच्छवासों में विभाजन न हो।
3. रचना संस्कृत अथवा असंस्कृत (प्राकृत या अपभ्रंश) मे हो।
4. नायक अपने वृत्त का वर्णन स्वयं न करे, कोई अन्य करे।

भामह का आख्यायिका तथा कथाकाविवेचन स्थूल है। आचार्य दण्डी भामह द्वारा किये गये भेद को तात्त्विक नहीं मानते, उनके अनुसार ये दोनों एकरूप हैं, इनमें केवल नाम का भेद है-

तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥ (काव्यादर्श)

संभवतः भामह के समय में इन दोनों में पर्याप्त भेद माना जाता रहा होगा और दण्डी के समय तक नियमों में अनियमितता आ गयी होगी। दण्डी के अनुसार कथा और आख्यायिका में एक मौलिक भेद प्रतीत होता है कि आख्यायिका का कथानक प्रख्यात है और कथा का कविकल्पित।

हर्षचरित आख्यायिका तथा कादम्बरी कथा

बाण ने स्वयं हर्षचरित को 'आख्यायिका' (करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्) तथा कादम्बरी को 'कथा' (धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा) माना है।

हर्षचरित की रचना गद्य में हुई है। उसका विषय उदात्त है और कथानक उच्छवासों में विभक्त हुआ है। हर्षचरित में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग किया गया है तथा वे भावी घटनाओं के सूचक भी हैं। हर्षचरित में अभिप्राय-विशिष्ट चिह्नों का प्रयोग नहीं हुआ है।

कादम्बरी में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है और वह उच्छवासों में विभक्त भी नहीं है। इसकी रचना संस्कृत भाषा में हुई है। कादम्बरी का नायक चन्द्रापीड स्वयंअपने चरित का वर्णन नहीं करता। इस प्रकार भामह द्वारा निर्दिष्ट लक्षण कादम्बरी में तो मिलते हैं तथा कुछ लक्षण हर्षचरित में भी मिलते हैं।

अग्निपुराण में निर्दिष्ट कथा और आख्यायिका के अधिकांश लक्षण कादम्बरी और हर्षचरित के संबंध में खरे उतरते हैं। दण्डी द्वारा मान्य विशेषतायें, आख्यायिका का कथानक प्रख्यात और कथा का कविकल्पित होता है, भी हर्षचरित और कादम्बरी में उपलब्ध हो जाती हैं।

बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

भारतीय जनमानस में प्रवाहित अमृतस्वरूपी रसधारा, समाज और संस्कृति के विभिन्न सोपान, लोकजीवन के विविध पक्ष, प्रकृति के पग-पग पर परिवर्तनशील अद्भुत दृश्य, विचारों और भावों रूपी सरोवर में उठने वाली सहस्रों तरंगों तथा जीवन के प्रत्येक पक्ष का जो सजीव चित्रण महाकवि बाणभट्ट ने अपने काव्य में किया है वह अपने ऐश्वर्य के कारण संस्कृत-साहित्य रूपी रसामृत का पान करने वाले विद्वानों के हृदयों को आह्लादित करता है।

संस्कृत साहित्य में बाण के विषय में प्रसिद्ध उक्ति 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' में 'जगत्' शब्द से 'काव्यजगत्' अथवा 'काव्यकल्पना रूपी संसार' यह अर्थ गृहीत होता है। 'काव्यजगत्' से यहाँ अभिप्राय सुदीर्घ काव्यपरम्परा से है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या बाण से पूर्ववर्ती संस्कृत-साहित्य भी बाण की झूठन हुआ? ऐसी कल्पना ग्राह्य नहीं है। तब क्या 'जगत्' शब्द से बाण के उत्तरवर्ती साहित्य का ग्रहण होना चाहिए। यही उचित है क्योंकि यदि ऐसा न मानें तो पहले महाभारत के विषय में कहा जा चुका है- 'यदिहास्ति तदन्यत्र

यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।' इसका समाधान यही है कि बाण के उत्तरवर्ती कवियों की काव्यकला उनसे बढ़कर नहीं है अथवा उनकी कल्पनाओं में लेशमात्र भी नवीनता नहीं है क्योंकि वह कल्पना महाकवि बाण के द्वारा पूर्णरूप से चित्रित की जा चुकी है।

बाण के सम्बन्ध में प्रस्तुत प्रसंगात्मक कथन का भाव यही है कि बाण के काव्य में अनुभूति का विस्तार, कल्पना की ऊँची उड़ान, पात्रों और वर्णनों की भिन्नता के अनुरूप शब्द-संचय, शैली-भाव-भंगिमा-रस एवं अलंकारों का प्रयोग सौन्दर्य की पराकाष्ठा पर है, काव्यक्षेत्र में जो कुछ भी वर्णनीय है उसका नवीनतम रूप बाण के काव्य में दृष्टिगोचर होता है।

बाण की विद्वत्ता, अलौकिक निपुणता, साहित्य के एक-एक पक्ष का सूक्ष्म प्रस्तुतीकरण, रस एवं अलंकारों का सुन्दर संयोग तथा दिव्य एवं अदिव्य पात्रों का सम्मिलन आज भी कवियों के लिए मार्गदर्शक बना हुआ है। बाण परिस्थितियों का गंभीर वर्णन करते हैं, साथ ही उस विषम स्थिति से बाहर निकलने का समाधान भी प्रस्तुत कर देते हैं। कथानक के माध्यम से प्रेम, मित्रता, तपस्या और त्याग आदि भावनाओं का मनोहर चित्र खींच देते हैं जो जीवन का सुखमय रूप प्रस्तुत करता है।

बाण के कथानक जीवन के प्रत्येक पक्ष को अपने आप में समेटे हुए हैं। इतिवृत्त का प्रारम्भ आकृष्ट करने वाला होना चाहिए। मध्य भाग में समस्या का विस्तार होना चाहिए तथा अंत में फल प्राप्ति अभीष्ट है। बाण इन उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णतया सफल हुए हैं। कादम्बरी के प्रारम्भ में राजा शूद्रक का वर्णन पाठक को आकर्षित कर कथा विस्तार की ओर उन्मुख करता है-

"आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चित शासनः पाकशासन इवापरः।"

आवश्यकतानुसार बाण के वर्णन विस्तार एवं संक्षेप को प्राप्त करते हैं। यद्यपि कुछ स्थल बहुत अधिक विस्तृत लगने लगते हैं, परन्तु कहीं-कहीं वाक्य बहुत कुछ प्रकट कर देते हैं- **"प्रथमं प्राचीम्, ततस्त्रिशङ्कुतिलकाम्, ततो वरुणलाञ्छनाम्, अनन्तरं च सप्तर्षिताराशबलां दिशं जिग्ये। वर्षत्रयेण चात्मीकृताशेषद्वीपान्तरं सकलमेव चतुरुदधिखातवलय परिखाप्रमाणं बभ्राम महीमण्डलम्।"**

बाण के पात्र उनके कला-कौशल का जीता जागता चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। बाण के काव्य में उनके पात्र अपनी विभिन्न प्रकार की रुचियों, बौद्धिक स्तर, मनोवृत्तियों और परिस्थितियों के साथ चित्रित हुए हैं। बाण पात्रों

के वर्णन में चाहे वह गौरवर्णा महाश्वेता हो, काली चाण्डाल-कन्या हो, कादम्बरी हो या राजा शूद्रक अथवा चन्द्रापीड जैसे पुरुष हों, कपिंजल का तपस्वी रूप हो या शबर सेनपति मातंग का भयंकर आकार हो, सिद्धहस्त हैं।

चन्द्रापीड के धैर्य का वर्णन दर्शनीय है- **"अहो बालस्यापि सतः कठोरस्येव ते महद्धैर्यम्।"** उसमें गुरुजनों के प्रति अगाध भक्ति-भाव है। शुकनास के उपदेश का चन्द्रापीड पर प्रभाव वर्णन कितना मनोहर है- **"उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलंकृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।"**

महाश्वेता का पुण्डरीक के प्रति आकर्षण बाण के वर्णन चातुर्य को दर्शाता है- **"तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथितशिक्षितेनानाख्येयेन, स्वसंवेद्येन केवलं न विभाव्यते किं तद्रूपसंपदा, किं मनसा, किं मनसिजेन, किमभिनवयौवनेन, किमनुरागेणैवोपदिश्यमानं, किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अहं न जानामि कथंकथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम्।"**

पात्रों के वर्णन में बाणभट्ट की कुशलता तथा स्वाभाविकता को देखते हुए दासगुप्ता तथा डे महोदय ने अपनी पुस्तक "History of Sanskrit Literature में लिखा है- "But making allowance for aberrations inevitable in a rich and exuberant talent, it must be said that Bana's power of characterisation, delineation of sentiment is not entirely divorced from reality."

बाण की कृतियों में रस सर्वत्र निर्बाध गति से प्रवाहमान होता है। उन्होंने शृंगार के दोनों पक्षों तथा अन्य सभी रसों का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से किया है। भावों के अनुसार शब्दों का चयन बाण की विशेषता है। महाश्वेता के प्रथम प्रेम और कादम्बरी के प्रथम दर्शन के समय भावों की अलौकिक रचना है। कवि ने सरस्वती और दधीचि के सम्भोग का वर्णन एक ही वाक्य में कर दिया है- **"यथा मन्मथः समाज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथानुरागः शिक्षयति, यथा विदग्धताध्यापयति तथा तामभिरामां रामामरमयत्।"**

डा० भोलाशंकर व्यास कहते हैं- "रसप्रवणता, कलासौन्दर्य, वक्रोक्तिमय अभिव्यञ्जना-प्रणाली, सानुप्रासिक समासान्त पदावली, दीपक, उपमा और स्वभावोक्ति की रुचिर योजना- जिस के बीच-बीच में श्लेष, विरोधाभास और

परिसंख्या को गूँथ दिया गया है- बाण की शैली की विशेषता है। बाण की कथा इतनी रसवती है कि वह स्वयं पदशय्या से समन्वित हो जाती है.........., जैसे कलापूर्ण उक्ति का प्रयोग करने वाली कोमल नवोढा के स्वयं ही रस से परिपूर्ण होकर शय्या की ओर आने पर नायक का हृदय इसलिए चमत्कृत हो जाता है कि वह अद्भुत का समावेश कर देती है।'

"स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥" (काद०)

बाण के काव्य में अलंकार योजना बड़ी चित्ताकर्षक है। वहाँ अलंकारों का वर्णन वातावरण, स्थान एवं विषय के अनुरूप हुआ है। यह सत्य है कि वर्णनानुकूल रस एवं अलंकारों के प्रयोग में बाण का साम्य प्राप्त करना कवियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से कोई विषय अछूता नहीं रहा जहाँ कथानक में हृदय का कोमल पक्ष दृष्टिगोचर होता है। वहाँ बाण ने अधिकांशतः शब्दालंकारों और उपमा, उत्प्रेक्षाआदि सरल अर्थालंकारों का प्रयोग किया है तथा विपरीत स्थिति में गंभीर विषयों के वर्णन में श्लेष विरोधाभास आदि क्लिष्ट अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। महाश्वेता वृत्तान्त में महाश्वेता का अपने विषय में कथन रसनोपमा का सुन्दर उदाहरण है- **"क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्॥"**

इसी प्रकार जाबालि ऋषि के आश्रम वर्णन में विरोधाभास का प्रयोग दर्शनीय है- **"यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षुरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु, रामानुरागी रामायणेन न च यौवनेन-"**

बाण की शैली तथा भाषा संस्कृत-साहित्य में अनुपम है। प्रयास करने पर भी कोई उसके साम्य को प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने अपनी मौलिक उद्भावनायें कीं तथा भाषा एवं शैली की दृष्टि से अपने युग का मार्ग दर्शन किया। बाण की रचनाओं में मुख्य रूप से पाञ्चाली रीति सामने आती है। राजशेखर ने बाण की शैली की विशेषता को बताते हुए कहा है-

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥"

कवि राजशेखर का मत युक्तिसंगत ही है कि बाण के गद्य में शब्द और अर्थ का अद्भुत संतुलन देखने को मिलता है। कठोर विषयों के वर्णन में क्लिष्ट पदों का तथा सरल प्रसंगों में कोमल पदावली का प्रयोग बाण की विशेषता है। वसन्त के वर्णन में कोमल पदावली का उदाहरण दृष्टव्य है- **"अशोकतरुताडनरणितरमणीयमणिनूपुरझंकारसहस्रमुखरेषु, विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजालमञ्जुसिञ्जितसुभगसहकारेषु अविरलकुसुमधूलिवालुकापुलिनधवलितधरातलेषु, मधुमदविडम्बितमधुकर-कदम्बकसंवाह्यमानलतादोलेषु, उत्फुल्लपल्लवलवलीलीयमानमत्तकोकिलोल्ला-सितमधुशीकरोद्दामदुर्दिनेषु।"** (काद०)

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार गद्य के चार प्रकार हैं- मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक। मुक्तक समासरहित होता है, वृत्तगन्धि में गद्य के अंश होते हैं, उत्कलिकाप्राय में दीर्घ समास तथा चूर्णक में छोटे-छोटे समास होते हैं। (सा०द०-6/330-332) बाण की कृतियों में मुक्तक, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक, तीन प्रकार का गद्य मिलता है। आचार्य विश्वनाथ ने बाण का निम्नलिखित गद्यांश मुक्तक के रूप में उद्धृत किया है- "गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे।"

बाण के भाषा-प्रयोग की कुशलता से ही उनकी रचनाओं का प्रेम-सौन्दर्य और कल्पना का मनमोहक रूप उजागर होता है। ऐसा दासगुप्त तथा डे महोदय का मानना है- "But it should not be forgotten that it is mainly by its wonderful spell of language and picturesqueness of imagery that Bana's luxuriant romances retain their hold on the imagination, and it is precisely in this that their charm lies."

– Dasgupta and De. (A History of Sanskrit Literature, Vol.I, P.237)

बाण का प्रकृति-वर्णन संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। प्रकृति प्रेम से आप्लावित अन्तःकरण वाले कवि बाण, सरोवर, वन, उपवन, घाटियों और पर्वतों के ऊँचे नीचे शिखरों पर विचरण करते हुए पाठकों को उसी वातावरण में ले जाते हैं। कालिदास ने जहाँ प्रकृति के कोमल पक्ष का आश्रय लिया है, वहीं बाण ने उसके कोमल और कठोर दोनों पक्षों में समायोजन किया है। उनके प्रकृति-वर्णन से स्पष्ट है कि उन्हें प्राकृतिक पदार्थों का कितना सूक्ष्म ज्ञान था। वर्णन के अनुरूप वे प्राकृतिक वातावरण चित्रित कर देते हैं। प्रकृति का

मानवीकरण करने में बाण कुशल चित्रकार सिद्ध हुए हैं। बाण का प्रभात, सन्ध्या, चन्द्रोदय वर्णन, ग्रीष्म, शरद्, वसन्त ऋतु, वन-प्रान्त, शून्याटवी, कैलास की घाटी, वनग्राम, गाँव की प्रकृति, ऋषियों के आश्रम, सिद्धायतन, शबरमृगया, सरोवर वर्णन, शोणनदी, आकाशगंगा तथा अशुभ की सूचना देने वाले उत्पातों से युक्त प्रकृति के विभिन्न चित्र दर्शनीय हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के आराधक बाण पग-पग पर अपनी तूलिका से प्रकृति के प्रत्येक रंग को, दृश्य को चित्रित करते हुए चलते हैं। अच्छोद सरोवर पर पहुँचते ही उनका मन उन्मत्त हो उठता है और भावों का प्रस्फुटीकरण अत्यन्त सरल शब्दों में करते हैं- **"आलोकमात्रेणैवापगतश्रमो मनस्येवमकरोत्..... अहो निष्फलमपि.... अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम् आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः, दृष्टः आह्लादनीयानामवधिः।"**

बाण का प्रकृति चित्रण अनेक स्थानों पर भूत एवं भावी घटनाओं की सूचना दे देता है। उनकी प्रकृति भावी अनिष्ट की सूचना देने वाले उत्पातों से युक्त भी दिखायी देती है जैसे राजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु से पूर्व अशुभ का संकेत देने वाले अनेक उत्पातों का वर्णन मिलता है (हर्ष.)।

बाण के काव्य में प्रेम एवं सौन्दर्य का जैसा उदात्त रूप दिखायी देता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनका प्रेम वर्णन जन्म-जन्मान्तरों तक चलता है। प्रेम प्रेमी-युगल को कई जन्मों तक बाँधकर रखता है। अनियन्त्रित प्रणय का बाण कड़ा विरोध करते हैं पुण्डरीक का प्रसंग इसका उदाहरण है। संयत-प्रेम का समर्थन कालिदास के समान ही बाण ने भी किया है। शारीरिक आकर्षण विशुद्ध प्रेम नहीं, वासना है। इस प्रकार का प्रेम अस्थिर होने के कारण सफल नहीं होता तथा समाज को स्वस्थ वातावरण नहीं दे सकता।

स्वतः अन्तःकरण में प्रस्फुटित होने वाला प्रेम शुद्ध है, पावन है और सुखदायक है- **"नन्वियं सा..... प्रकृतिर्मर्त्यानां येषामकाण्ड-विसंवादिन्यः प्रीतयो न गणयन्ति निष्कारणवत्सलताम्।"** (काद॰ 391)।

सौन्दर्य-वर्णन में भी बाण अद्वितीय हैं। किसी भी पात्र अथवा स्थान के सौन्दर्य-वर्णन में उनका सूक्ष्म निरीक्षण छिपा हुआ दिखायी देता है, एक-एक वस्तु का अनेकानेक विशेषणों के साथ चित्रण करते हैं। कादम्बरी में चाण्डाल-कन्या का सौन्दर्य वर्णन अत्यन्त सुन्दर एवं दर्शनीय है- **"श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्...... गुल्फावलम्बिनीलकञ्चुकेनावच्छन्नशरीराम्, उपरिरक्तांशुकरचितावगुण्ठनाम्....................... मलयमेखलामिव**

चन्दनपल्लवावतंसाम्.....।"

बाण के पाण्डित्य अथवा ज्ञान के विषय में कुछ भी कह गाना सरल नहीं है। उनके काव्य के अनुशीलन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उन्हें वेद, वेदांग, रामायण महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन, राजनीति, इतिहास, सामुद्रिक शास्त्र, वनस्पति वर्ग, संगीत, साहित्य, आयुर्वेद, स्वप्न, शकुन, उत्पात, हाथियों और अश्वों के विषय में गूढ़ ज्ञान प्राप्त था। सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञान का एक उदाहरण कादम्बरी से उद्धृत है-

"यस्यपादतले पद्मं चक्रं वाप्यथ तोरणम्।
अङ्कुशं कुलिशं छत्रं स सम्राड् भवति ध्रुवम्।।"

बाण का काव्य तत्कालीन संस्कृति और समाज का एक चलचित्र सा हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। उन्होंने प्रत्येक वस्तु का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण तथा वर्णन किया है। उस समय की शासन व्यवस्था, राजा की दिनचर्या, सेना, राजकुल, स्कन्धावार, शस्त्र, हाथी-घोड़े, तत्कालीन समाज की वर्ण-व्यवस्था, शहर, गाँव एवं वन्य जीवन, विवाह-प्रथा, व्यवसाय, वस्त्र, आभूषण, श्रृंगार-प्रसाधन, शिक्षा-साहित्य, धार्मिक रीति-रिवाज, सामाजिक विचारधाराओं और विश्वास, मनोरंजन के साधन आदि प्रत्येक विषय का बाण ने अवसरानुकूल तथा विषयानुरूप वर्णन किया है। आभूषणों के न केवल नाम अपितु सूक्ष्म वर्णन उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ हर्षचरित में त्रिकण्टक नामक कर्णाभूषण का उल्लेख मिलता है, इसमें दो मोतियों के बीच में एक मरकत मणि को जड़ा जाता था- **"कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ता- फलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकण्टककर्णाभरणस्य।"** (हर्ष 1/9)

बाण की काव्यकला के विषय में जितना लिखा जाये उतना ही कम है। परवर्ती कवियों पर बाण की काव्यकला का प्रभाव संस्कृत-साहित्य के ज्ञाता किसी भी व्यक्ति की दृष्टि से अछूता नहीं है। यथार्थ के धरातल पर आधारित कल्पना की जैसी रंगों भरी ऊँची उड़ान बाण के काव्य में मिलती है वह हर किसी के लिए संभव नहीं है। श्री अमरनाथ पाण्डेय महोदय ने अपनी पुस्तक "बाणभट्ट का आदान-प्रदान" में ठीक लिखा है- "बाणभट्ट ने जिन उपलब्धियों से संस्कृत-साहित्य का सम्भूषण किया है, उन्हीं के आधार पर अनेक परवर्ती कवियों ने भी साहित्य की सर्जना की है। परवर्ती कवियों की रचनाओं में बाण की कल्पनाओं, भावरेखाओं, चिन्तन-पद्धतियों, काव्यसौष्ठव की विधाओं आदि का प्रतिबिम्बन परिलक्षित होता है। बाणभट्ट संस्कृत साहित्य के ऐसे मनीषी हैं,

जिनकी प्रतिभा से कविमण्डल प्रभावित है और जिनकी अलौकिक अभिव्यञ्जनाओं की छटा दर्शनीय है।"

अतः निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" यह उक्ति कहने वाला विद्वान् निश्चितरूप से संस्कृत-साहित्य की अनुपम निधि तथा परवर्ती साहित्य पर बाण के प्रभाव को भली प्रकार से परख चुका होगा।

महाकवि बाण की प्रशस्तियां

प्राचीन आलोचकों में अधिकांशतः सभी ने मुक्त कंठ से बाण की प्रशंसा की है। कुछ ने उनके काव्य के किसी विशेष पक्ष को उजागर किया है। बाण के विषय में कही गयी कुछ प्रशंसात्मक उक्तियाँ प्रस्तुत हैं:-

"श्लेषे केचन शब्द गुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलंकारे कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गम्भीर धीर कविता विंध्यावटी चातुरी
संचारी कविकुम्भिकुभाभिदुरो बाणस्तु पंचाननः॥"

अर्थात् कुछ कवि श्लेष प्रयोग में निपुण हैं, कुछ शब्दों के गुम्फन में, कुछ रस और अलंकार प्रयोग में, कुछ सुन्दर अर्थ के विषय में तथा कुछ कथा के वर्णन में निपुण हैं, परन्तु बाण सब जगह गम्भीर कविता रूपी विन्ध्याटवी में निपुणतापूर्वक विचरण करने वाला तथा कविरूपी हाथियों के गण्डस्थलों का भेदन करने वाला शेर है।

"जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥" (गोवर्धनाचार्य)

अर्थात् जिस प्रकार प्राचीनकाल में शिखण्डिनी शिखण्डी बन गयी थी उसी प्रकार मैं समझता हूँ कि प्रौढ़ता को प्राप्त करने के लिए वाणी ने बाण का रूप ले लिया।

"हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः।"
(बाण हृदय में रहने वाला कामदेव है।)

"बाणं सत्कविगीर्वाणमनुबध्नाति कः कवि।
सिन्धुमन्धु किमन्वेति द्युमणिकतमो मणिः॥"

अच्छे कवियों में श्रेष्ठ बाण की वाणी का कौन कवि अनुकरण कर सकता है? क्या कुआँ समुद्र का अनुकरण कर सकता है, कौन मणि सूर्य हो

सकती है?

"हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत्कविकुरंगाणां चापलं तत्र कारणम्॥" (त्रिलोचन)

अर्थात् बाण (कवि या तीर) के हृदय में लगने पर भी कवि रूपी हरिण यदि मन्द पदरचना में संलग्न हों तो इसमें उनकी चंचलता ही कारण है।

"कादम्बरीकथां श्रुत्वा कवयो मौनमागताः।
बाण ध्वनावनध्यायो भवतीति श्रुतिर्यतः॥" (कीर्तिकौमुदी)

(कादम्बरी की कथा को सुनकर कवियों ने मौन धारण कर लिया क्योंकि ऐसा सुना जाता है कि बाण की ध्वनि होने पर अनध्याय होता है।)

"केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसंधानः पुलिन्दकृत संनिधिः॥"

अर्थात् अकेला भी चमकता हुआ बाण कवियों को मदहीन कर देता है, पुलिन्द के सामीप्य से युक्त एवं निशाना बनाये हुए का तो फिर कहना ही क्या।

"रूचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥"

मनोहर स्वर एवं वर्ण वाले पदों से युक्त (युवती पक्ष में मधुर आवाज़, सुन्दर रंग और गति से युक्त), रस और भाव से युक्त है, संसार के मन को हरती है। क्या वह युवती है? नहीं-नहीं मधुर स्वभाव वाले बाण की वाणी है।

"प्रविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते।"

(बाण के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाने पर वाणी कण्ठ में ही अवरुद्ध हो जाती है।)

"अर्थेश्वरं हन्त भजे अभिनन्द वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे।
रसेश्वरं नौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि॥"

(अर्थ के स्वामी अभिनन्द को प्रणाम करता हूँ, वाणी के स्वामी वाक्पतिराज की वन्दना करता हूँ, रस-व्यञ्जना के स्वामी कालिदास को प्रणाम करता हूँ तथा सभी के स्वामी बाण के सम्मुख नतमस्तक हूँ।

इस प्रकार विभिन्न उक्तियों पर दृष्टिपात करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश प्राचीन आलोचक बाण को सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार करते हैं।

गुरु के उपदेश का महत्त्व

"शुकनासोपदेश" राजगुरु शुकनास द्वारा युवराज चन्द्रापीड को राज्याभिषेक के समय दिया गया उपदेश है। शुकनासोपदेश में वेद, वेदाङ्ग और धर्मशास्त्रों में कहे गये वचन भली-भाँति अनुस्यूत हैं और हर प्रकार के राज्यतन्त्र में उन वचनों की सार्वकालिक उपयोगिता और व्यावहारिकता सर्वविदित है। शुकनासोपदेश के अवलोकन से विदित होता है कि शुकनास और चन्द्रापीड दोनों ही महाज्ञानी हैं। जैसा कि स्वयं शुकनास ने कहा है कि अत्यन्त विनम्र, सभी जानने योग्य विषयों एवं सभी शास्त्रों के ज्ञाता चन्द्रापीड के लिए कुछ भी उपदेश देने योग्य शेष नहीं है, परन्तु फिर भी उन्हें और अधिक विनम्र बनाने के उद्देश्य से ही उपदेश दिया गया है।

चन्द्रापीड जैसे असाधारण व्यक्ति के लिए भी जब उपदेश की आवश्यकता थी, तो सामान्य व्यक्ति के लिए तो गुरु का उपदेश और भी अधिक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। परन्तु उपदेश के लिए योग्य पात्र का होना अनिवार्य है।

धनी परिवार में जन्म लेना, अत्यन्त शक्तिशाली होना, बहुत सुन्दर होना तथा नवयौवन, यद्यपि ये सब गुण माने जाते हैं परन्तु इनमें से एक भी गुण यदि किसी के पास हो तो उसे उन्मत्त बना देता है और यदि किसी के पास ये सभी गुण हों तो फिर कहना ही क्या? शास्त्रों के अध्ययन से बुद्धि परिष्कृत हो जाती है परन्तु फिर भी युवावस्था का प्रारम्भ चित्त को चंचल कर देने वाला होता है। जिस प्रकार रेगिस्तान में दोपहर के समय रेत पर पड़ने वाली सूर्य की किरणें वहाँ पर जल की भ्रान्ति को उत्पन्न कर देती हैं और मृग उस भ्रम के कारण जल की खोज में दौड़ता हुआ अन्त में समाप्त हो जाता है उसी मृगतृष्णा के समान यौवन में विषय भोगों में अत्यधिक आसक्त हुआ व्यक्ति मिथ्या सुख की खोज में अपना सर्वनाश कर लेता है। गुरु का उपदेश ही ऐसी विनाशकारी स्थिति से बचा सकता है।

शास्त्र-ज्ञान से स्वच्छ हुए मन वाले व्यक्ति ही उपदेश के योग्य पात्र होते हैं, स्वच्छ मन स्फटिक मणि के समान होता है, जिस प्रकार स्फटिक मणि पर पड़ने वाली चन्द्रमा की किरणें उसमें प्रवेश कर उसे प्रकाशित कर देती हैं उसी प्रकार स्वच्छ हृदय में प्रवेश कर गुरु का उपदेश उसके व्यक्तित्व को आलोकित कर उसे कल्याण के मार्ग की ओर उन्मुख करता है-

"अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव
रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।"

उपदेश का महत्त्व पात्र की योग्यता पर अत्यधिक निर्भर करता है। जिस प्रकार कान में यदि साफ पानी भी चला जाये तो भयंकर दर्द को उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार अयोग्य पात्र को दिया गया उपदेश यद्यपि हितकारी होता है, परन्तु उसके स्वभाव के अनुकूल न होने के कारण कष्ट को ही उत्पन्न करता है, दूषित मन वाला व्यक्ति या तो गुरु के उपदेश का उपहास करता है अथवा क्रोधित होकर अपना सर्वनाश कर बैठता है।

जिस प्रकार हाथी के मस्तक पर पहनाये गये शंखाभूषण उसके दृष्टिदोष को दूर करने के साथ-साथ उसकी सुन्दरता को भी बढ़ाते हैं उसी प्रकार योग्य व्यक्ति को दिया गया गुरु का उपदेश उसे उचित अनुचित का ज्ञान कराकर उसके दृष्टिकोण को सुसंस्कृत कर देता है तथा उसके व्यक्तित्व को गरिमामय बना देता है- **"...करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति।"।**

गुरु का उपदेश दोषों को भी गुणों के रूप में उसी प्रकार परिवर्तित कर देता है जिस प्रकार बुढ़ापा काले बालों को सफेद बालों के रूप में बदल देता है। गुरु का उपदेश अन्तःकरण की शान्ति का मूल कारण है। जब भी व्यक्ति किसी दुविधा में फंसा होता है और सही गलत का निर्णय नहीं कर पाता, तभी गुरु का स्वर उसके कानों में गूँज जाता है और उसे उचित मार्ग पर अग्रसर करके उसके मन को शान्त और स्थिर कर देता है। जिस प्रकार प्रदोषकालीन चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार गुरु का उपदेश अत्यन्त मलिन दोषों को भी दूर कर देता है- **"हरति च सकलमतिमलिनमप्यन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमय निशाकर इव गुरूपदेशः।"**

उपदेश के लिए उचित समय युवावस्था का आरम्भ ही है जब तक कि व्यक्ति ने विषयों का उपभोग न किया हो क्योंकि कामदेव के बाणों के प्रहार से प्रभावित हृदय में से उपदेश उसी प्रकार निकल जाता है जिस प्रकार छिद्रयुक्त पात्र में से जल बह जाता है।

दुष्ट स्वभाव वाला व्यक्ति चाहे कितने भी उच्च कुल में जन्म क्यों न ले अथवा कितना ही ज्ञानार्जन क्यों न कर ले उसके स्वभाव को गुरु का उपदेश भी विनम्र नहीं कर सकता, जिस प्रकार रावण महाज्ञानी होने पर भी अपने दुष्ट स्वभाव के कारण अहंकार में डूबा रहा और अन्ततः विनाश को प्राप्त हुआ। अग्नि चाहे साधारण लकड़ी में लगी हो अथवा चन्दन वन में, वह तो जलायेगी ही उसी प्रकार दुष्ट स्वभाव चाहे साधारण कुल में जन्मे व्यक्ति का हो अथवा कुलीन व्यक्ति का, वह विनाश का कारण बनेगा ही।

गुरु का उपदेश बड़ा विलक्षण है। जिस प्रकार जल से किया गया स्नान मनुष्य के समस्त मलों को दूर कर देता है, उसी प्रकार गुरु का उपदेश सभी प्रकार के मानसिक विकारों को दूर करने के कारण एक प्रकार का जलरहित स्नान है- **"पुरुषाणामखिलमल- प्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्।"**

सामान्य वृद्धत्व में व्यक्ति कुरूप हो जाता है, बाल सफेद हो जाते हैं, शरीर शिथिल हो जाता है, परन्तु गुरु का उपदेश अन्तःकरण की शान्ति और उचित अनुचित का ज्ञान देने के कारण कुरूपता से रहित वृद्धत्व है, यही गुरु के उपदेश की विलक्षणता है। यह उपदेश शरीर में मोटापे के बिना ही गुरुता प्रदान करने वाला है।

गुरु का उपदेश सब प्रकार से सांसारिक वस्तुओं की तुलना में अलौकिक है, साधारण रूप से कान में पहने जाने वाले आभूषण सोने के बने हुए होते हैं, परन्तु यह ऐसा कर्णाभूषण है जो स्वर्ण निर्मित न होते हुए भी स्वर्णाभूषणों से भी उत्कृष्ट है। वह ऐसा (ज्ञान रूपी) प्रकाश है जिसे नेत्रों से नहीं देखा जा सकता- **"अतीतज्योतिरालोकः"।**

गुरु का उपदेश ऐसा जागरण है जो उद्विग्नता को उत्पन्न नहीं करता अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति को सतर्क रखता है। इसके विपरीत सामान्य जागरण तो बेचैन कर देने वाला होता है।

विशेष रूप से राजाओं के लिए गुरु का उपदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि राजाओं को उपदेश देने वाला व्यक्ति साधारण नहीं हो सकता क्योंकि अधिकांशतः राजा के भय के कारण उसकी हर सही गलत बात का लोग अनुमोदन कर देते हैं। अतः राजाओं के उपदेशक गुरु को विशेष रूप से साहसी तथा विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न होना चाहिए- **"विशेषेण तु राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्।"**

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि बाण ने गुरु के उपदेश की महत्ता को बड़ी गहराई से अनुभव किया था जिसे 'शुकनासोपदेश' के माध्यम से सहृदय जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया।

लक्ष्मी का स्वरूप

शुक्रनास ने चन्द्रापीड को उपदेश देते समय लक्ष्मी के विषय में बड़े विस्तार से कहा है। उसके स्वरूप, उसके चरित्र के एक-एक पक्ष को उजागर किया है, जिससे धन संपन्न लोग लक्ष्मी के साथ आने वाले अनर्थों की श्रृंखला

से स्वयं को सुरक्षित रख सकें तथा प्रगति-पथ पर अग्रसर हो सकें। लक्ष्मी के विषय में कहना आरम्भ करते ही शुकनास कहते हैं- **"आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्।"** अर्थात् कल्याण को चाहने वाले सर्वप्रथम लक्ष्मी के विषय में ही जानें। लक्ष्मी के स्वरूप अथवा चरित्र के विषय में कहते हैं कि श्रेष्ठ योद्धाओं की तलवारों रूपी कमल वन में भ्रमण करने वाली अर्थात् अपने कारण राजाओं के योद्धाओं में युद्ध करवाने वाली यह लक्ष्मी क्षीरसागर से मानो पारिजात के पत्तों से राग अर्थात् आसक्ति की लालिमा, चन्द्रकला से एकमात्र कुटिलता, उच्चैःश्रवा से अस्थिरता, कालकूट से सम्मोहन शक्ति, मदिरा से मादकता और कौस्तुभमणि से क्रूरता को लेकर ही उत्पन्न हुयी है अर्थात् ये इसके जन्मजात गुण हैं क्योंकि लक्ष्मी की उत्पत्ति क्षीरसागर से मानी गयी है।

लक्ष्मी बड़ी दुष्टा है, प्रथम तो प्राप्त ही कठिनाई से होती है, फिर कष्टों से संभाली जाती है, गुणों के कारण दृढ़तापूर्वक स्थिर की जाती हुई भी नष्ट हो जाती है- **"दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति।"**

हजारों योद्धा अपनी तलवारों की शक्ति से इसकी रक्षा करते हैं, पर यह चंचला फिर भी निकल भागती है।

लक्ष्मी का स्वभाव बड़ा विचित्र और विनाशकारी है, यह परिचय का सम्मान नहीं करती है, आज जिसके पास है, कल उसका ही परित्याग कर देती है। कुलीनता, सौन्दर्य, वंश परम्परा, सदाचार, पांडित्य, शास्त्र, धर्म, त्याग, विशिष्ट ज्ञान, सत्य, शुभ लक्षणों आदि सद्गुणों का अनुसरण नहीं करती है और गन्धर्वनगर की रेखा के समान देखते-देखते ही लुप्त हो जाती है।

"न परिचयं रक्षति नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकते, न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। .... न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।"

लक्ष्मी भ्रमणशीला है, कभी भी एक स्थान पर नहीं रुकती और यह भ्रमणशीलता इसका जन्मजात गुण है। इसके जन्म के समय मन्दराचल पर्वत को मन्थन-यष्टि बनाकर क्षीरसागर का जो मन्थन हुआ था, वही मन्दराचल के घूमने का संस्कार इसमें आज तक बना हुआ है। ऐसा लगता है जैसे अनेक प्रकार के भ्रामक रूपों को धारण करने के लिए ही इसने विराट् भगवान विष्णु के शरीर का आश्रय लिया है।

गंगा की लहरों और बुलबुलों के समान चंचला है और नीच पुरुषों का आश्रय लेती है। लक्ष्मी तमोगुण बहुला है- **"पातालगुहेव तमोबहुला।"**

सूर्य जिस प्रकार विभिन्न राशियों में संचरण करता है उसी प्रकार यह लक्ष्मी विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के पास विचरण करती है। यह दुष्ट पिशाचिनी के समान कुछ मनुष्यों को धनी बनाकर अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति को उन्मत्त बना देती है सरस्वती जिस पुरुष के पास रहती है उसे ईर्ष्या के कारण लक्ष्मी त्याग देती है। गुणों का निरादर करती है- **"गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति।"**

उदारहृदय व्यक्ति का अशुभ के समान सम्मान नहीं करती, सज्जन पुरुष को अपशकुन के समान देखती भी नहीं- **"सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति।"**

उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति को साँप के समान लाँघ जाती है। शूरवीर को काँटे के समान दूर से ही छोड़ देती है। दानी, विनम्र और मनस्वी पुरुषों के पास नहीं जाती- **"दातारं दुःस्वप्न इव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति।"**

लक्ष्मी के चरित्र के विभिन्न पक्ष अपने आप में पर्याप्त विरोधाभास लिए हुए हैं। इस प्रकार यह मानो जादू दिखाती हुई स्वयं को प्रकट करती है। यथा निरन्तर ऊष्मा अर्थात् दर्प को उत्पन्न करती हुयी भी जड़ता अर्थात् मूर्खता को उत्पन्न करती है। उन्नति अर्थात् समृद्धि को दिखाती हुई भी नीचस्वभावता को प्रकट करती है। जलराशि (समुद्र) से उत्पन्न हुयी भी प्यास को बढ़ाती है। ऐश्वर्य को धारण करती हुई भी अकल्याणकारी स्वभाव को फैलाती है। बल (सेना आदि) को बढ़ाती हुई भी कंजूसी को उत्पन्न करती है। अमृत के साथ उत्पन्न होने पर भी कड़वे अर्थात् कष्टकारी परिणाम वाली है। शरीरधारिणी होते हुए भी अदृश्य रहती है। सर्वोत्तम पुरुष विष्णु में अनुरक्त होते हुए भी दुष्टों की प्रिया है- **"अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया।"**

यह लक्ष्मी स्वच्छ वस्तुओं को भी कलुषित कर देती है। जिस प्रकार दीपक की लौ जितनी अधिक प्रज्ज्वलित होती है उतनी ही कालिमा (काजल) को उत्पन्न करती है। उसी प्रकार यह चंचला जैसे-जैसे दीप्त होती है अर्थात् किसी को धन देती है वैसे-वैसे काजल के समान मलिन कर्मों को ही उत्पन्न करती है।

यह लक्ष्मी छलरूपी नाटक की प्रस्तावना है अर्थात् लक्ष्मी के आते ही व्यक्ति जीवन में छल-प्रपंच करने लगता है, जिससे और अधिक धन प्राप्त कर

सके। जिस प्रकार हाथी केले के वन में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करता है उसी प्रकार कामदेव लक्ष्मी के सान्निध्य में स्वतन्त्र रूप से रहता है अर्थात् धन की अधिकता के साथ-साथ काम संबंधी दोष स्वयमेव आ जाते हैं। मंगलकारी भावनाओं की लक्ष्मी वध-शाला है। राहु जिस प्रकार चन्द्रमा को ग्रस लेता है उसी प्रकार लक्ष्मी धर्म का नाश कर देती है- **"प्रस्तावना कपटनाटकस्य। कदलिका कामकरिणः। वध्यशाला साधुंभावस्य। राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य।"**

विरोधी स्वभाव वाली लक्ष्मी ठग विद्या में निपुण है। यह अपरिचिता लक्ष्मी जिसका आलिंगन करती है उसी को ठग लेती है। चित्र में चित्रित होते हुए भी यह चलती है, चंचला है, लक्ष्मी (मिट्टी, लकड़ी आदि से निर्मित लक्ष्मी मूर्ति) पुतली होते हुए भी जादू करती है, उकेरी हुई भी (धातु आदि पर बनायी गयी लक्ष्मी की मूर्ति) ठग लेती है, केवल सुनी जाती हुयी भी कपट करती है। इसके विषय में सुनने मात्र से उसे पाने के लिए मनुष्य कपट का आश्रय लेने लगता है और उसके विषय में सोचने मात्र से भी वह छला जाता है-**"पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति। उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते। चिन्तितापि वञ्चयति।"**

इस प्रकार लक्ष्मी का चरित्र विदग्धता से परिपूर्ण है। लक्ष्मी के स्वभावगत दोषों का कथन करने का तात्पर्य यही है कि धन की अधिकता, मनुष्य की विचारशीलता और सद्गुणों को समाप्त कर देती है।

राजाओं के चरित्र

बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' में शुकनास द्वारा युवराज चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश के माध्यम से लक्ष्मी द्वारा प्रभावित राजाओं के दुष्ट स्वभाव और चरित्र का वर्णन किया है, जिससे उस प्रकार के राजाओं से सावधान रहा जाये। वे राजा लोग इस प्रकार का आचरण करते हैं।

दुराचारिणी लक्ष्मी के द्वारा आश्रय बनाये गये राजा लोग असहाय और सब प्रकार से उच्छृंखल बन जाते हैं। राज्याभिषेक के लिए सामग्री और क्रियाओं का प्रयोग कल्याण के लिए किया जाता है, परन्तु ऐसे राजाओं के लिए मानो सब कुछ विपरीत होता है- जैसे अभिषेक के समय ही मंगल-कलशों के जल से मानो उनकी उदारता धुल जाती है, अभिषेक के बाद होने वाले यज्ञ के धुएं से मानो उनका अन्तःकरण कालिमायुक्त हो जाता है, पुरोहितों द्वारा प्रयुक्त कुशाओं रूपी बुहारी से मानो क्षमाशीलता बुहार दी जाती है, चँवर की हवाओं से मानो सत्यवादिता का गुण उड़ा दिया जाता है, ध्वजाओं के वस्त्रों के छोरों से मानो

यश पोंछ दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि राज्यलक्ष्मी रूपी धन-संपत्ति और ऐश्वर्य के आते ही मानो अभिषेक संस्कार में प्रयुक्त उपकरण और क्रियायें ही उनके उदारता, पवित्रता, क्षमा, सत्यवादिता, यश, विवेक और अन्य गुणों को नष्ट कर देते हैं- **"अभिषेकसमय एवैषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्.... ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः"।**

कुछ राजा लोग चंचल और अस्थिर सम्पत्तियों के द्वारा इस प्रकार लुभाये जाते हैं कि अपने कुल के विपरीत आचरण करने लगते हैं, धन संपत्ति में ऐसी चमक और आकर्षण होता है जैसे जुगनू चमकता है। इनसे प्राप्त होने वाला सुख नश्वर और क्षणिक होता है तथा दुःखद परिणाम वाला होता है। फिर भी कुछ इनमें ऐसे लिप्त हो जाते हैं कि जैसे उनकी पाँच इन्द्रियों ने हज़ारों इन्द्रियों का रूप ले लिया है। और मानो उनके हज़ार मन हों। इस प्रकार वे बहुत व्याकुल हो जाते हैं। संपत्तियों द्वारा विषय बनाये गये उन राजाओं की स्थिति ऐसी हो जाती है मानो वे दुष्ट ग्रहों द्वारा पकड़ लिये गये हों, मानो अभिचार मन्त्रों द्वारा वश में कर लिये गये हों, मानो हिंसक पशुओं द्वारा जकड़ लिए गये हों तथा मानो पिशाचों द्वारा ग्रस्त हों तात्पर्य यह है कि वे संपत्तियों के इतने वशीभूत हो जाते हैं कि उनकी बुद्धि और शरीर उचित प्रकार से कार्य नहीं कर पाते- **"ग्रहैरिव गृह्यन्ते। भूतैरिवाभिभूयन्ते। मन्त्रैरिवावेश्यन्ते। सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते। वायुनेव विडम्ब्यन्ते। पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते।"**

ये राजा कुटिल आचरण करते हैं, धर्महीनता के कारण इनका व्यवहार दूसरों के आश्रित होता है, अभिमान तथा असत्य के कारण कठिनता से बोलते हैं। सप्तच्छद वृक्ष के विकृत पुष्प-पराग के समान समीप स्थित मनुष्यों के सिर में दर्द उत्पन्न करते हैं। धन के घमण्ड के कारण अपने संबंधियों को भी उसी प्रकार नहीं पहचानते जिस प्रकार कोई मरणासन्न व्यक्ति किसी को नहीं पहचानता। ईर्ष्या के कारण प्रतापवान व्यक्तियों की ओर नहीं देखते। कितना भी समझाने से उसी प्रकार जागृत नहीं होते जिस प्रकार काले साँप के विष से पीड़ित व्यक्ति शक्तिशाली मंत्रों से भी नहीं उठता। तेजस्वी मनुष्यों के तेज को भी सहन नहीं कर पाते। मद्यपान से बढ़ी हुयी क्रूरता वाले राजा धूर्तों की प्रेरणा से अपनी प्रजाओं के लिए विनाशकारी कार्य करते हैं

ये राजा विनाश के कारण, भयानक और अदूरदर्शी होते हैं। वे निकृष्ट व्यक्तियों से घिरे रहते हैं। उनकी बातें नीरस होती हैं। उनके विषय में सोचने से भी मन अशान्त हो जाता है। विषय भोगों में इस प्रकार लिप्त रहते हैं कि

उन्हें अपने पतन का आभास भी नहीं हो पाता- **"पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।"**

कुछ दूसरे प्रकार के राजा स्वार्थसिद्धि एवं धनलिप्सा में लीन, दोषों को गुणरूप में परिभाषित करने वाले, अन्दर ही अन्दर स्वयं भी हँसने वाले और ठगी में निपुण धूर्तों द्वारा इस प्रकार समझाये जाते हैं कि विचित्र क्रिया-कलापों को करते हुए वे सभी के उपहास के पात्र बनते हैं- **"तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपिदिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति।"**

उन राजाओं में जो गुण विद्यमान नहीं होते, उनके चापलूस उन गुणों का भी उनमें मिथ्या आरोप करके प्रशंसा करते हैं और वे राजा स्वयं को अलौकिक गुणों से सम्पन्न मानकर शिव का अवतार समझने लगते हैं, मानो उनकी दो भुजाओं के भीतर दो और भुजायें हों और माथे की त्वचा के अन्दर एक तीसरा नेत्र भी हो।

उनका आचरण अभिमान से परिपूर्ण होता है। किसी को दर्शन देना ऐसा मानते हैं मानो उस पर कृपा कर रहे हों। किसी की ओर देखना उपकार करना मानते हैं। किसी से बात करना उसे पारितोषिक देना मानते हैं। आज्ञा देने को वरदान देना समझते हैं, किसी को छू लेने को पवित्र करना मानते हैं। अभिमान के कारण देवताओं को प्रणाम नहीं करते। ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करते। पूज्य व्यक्तियों की पूजा नहीं करते। अभिवादन करने योग्य मनुष्यों को अभिवादन नहीं करते। गुरुओं का स्वागत नहीं करते- **"मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः। न पूजयन्ति द्विजातीन्। न मानयन्ति मान्यान्। नार्चयन्त्यर्चनीयान्। नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्। नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्।"**

ऐसे राजा विद्वानों और वृद्धों का उपहास करते हैं। मन्त्रियों के उपदेश से ईर्ष्या करते हैं। हितकारी बात कहने वालों पर क्रोध करते हैं।

वे ऐसे लोगों के संपर्क में रहना पसन्द करते हैं जो रात-दिन हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करता रहे। वे उन का ही स्वागत करते हैं, उन से ही बात करते हैं, उनकी बात को ही प्रमाण मानते हैं। अभिचार क्रियाओं को करने के कारण निर्दय स्वभाव वाले पुरोहितों को वे गुरु मानते हैं, दूसरों को धोखा देने वाले मन्त्रियों को उपदेशक मानते हैं। एकमात्र लक्ष्मी में आसक्त रहते हैं, मारणात्मक शास्त्रों में ही रुचि रखते हैं तथा स्वाभाविक रूप से प्रेम करने वाले भाइयों को समूल नष्ट कर देते हैं।

इनके विपरीत आचरण करने वाले राजा उत्कृष्ट चरित्र वाले होते हैं तथा संसार के कल्याण के लिए कार्य करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कितनी प्रकार के राजाओं के चरित्र होते हैं तथा वे किस-किस प्रकार के कार्य करते हैं। इनके माध्यम से शुकनास चन्द्रापीड को ऐसे व्यक्तियों से सावधान रहने के लिए प्रेरित करते हैं।

महाकविबाणभट्ट कृतकादम्बरीकथान्तर्गतः

शुकनासोपदेशः

एवं समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरणसंभारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचिद् दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छञ्शुकनासः सविस्तरमुवाच।

शब्दार्थ-

एवम्=इस प्रकार। केषुचित्=कुछ। दिवसेषु=दिन। समतिक्रामत्सु=व्यतीत हो जाने पर। राजा=राजा तारापीड ने। चन्द्रापीडस्य=चन्द्रापीड का। यौवराज्याभिषेकं=राज्याभिषेक। चिकीर्षुः=करने की इच्छा वाला। उपकरणसंभारसंग्रहार्थम्=(अभिषेक के लिए) आवश्यक सामग्री समूह को एकत्र करने के लिए। प्रतीहारान्=द्वारपालों को। आदिदेश=आज्ञा दी। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम्= निकट स्थित राज्याभिषेक वाले। च=और। कदाचित्=कभी। दर्शनार्थम्=दर्शन के लिए। आगतम्= आये हुए। आरूढविनयम्=नम्रतायुक्त। अपि=भी। तम्=उसको (चन्द्रापीड को)। शुकनासः=शुकनास (ने)। विनीततरम्=और अधिक विनम्र। इन्छन्=इच्छा करते हुए। सविस्तरम्=विस्तारपूर्वक। उवाच=कहा।

अनुवाद -

इस प्रकार कुछ दिनों के व्यतीत हो जाने पर चन्द्रापीड के युवराज कर्म के लिए अभिषेक के इच्छुक राजा तारापीड ने आवश्यक सामग्री समूह को एकत्र करने के लिए द्वारपालों को आदेश दिया। शीघ्र ही युवराज पद पर अभिषिक्त किये जाने वाले और कभी दर्शन के लिए आये हुए पहले से भी अत्यधिक विनम्र उस (चन्द्रापीड) को (अपेक्षाकृत) और अधिक नम्र बनाने की इच्छा से शुकनास ने विस्तार से कहा।

टिप्पणी-

प्राचीनकाल में राजा वृद्धावस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज पद पर

इसलिए प्रतिष्ठित करता था जिससे वह उसके संरक्षण में ही राज्य कार्य संभालना सीख ले। इस अवसर पर एक महान् उत्सव किया जाता था। वेद-मन्त्रों के उच्चारण के साथ पवित्र तीर्थ-जलों में युवराज को स्नान (अभिषेक) कराया जाता था। इस सम्पूर्ण कार्य के लिए अनेक मांगलिक वस्तुओं की आवश्यकता होती थी जैसे उदुम्बर की लकड़ी का तख्त (राज्यसिंहासन), छत्र, चंवर, दुकूलवस्त्र, पगड़ी, तीर्थों कापवित्र जल, यज्ञ के लिए समिधाएं, पञ्च-पल्लव, कुशा, स्वर्ग-कलश आदि। इस प्रकार विद्वानों द्वारा वेद-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए समस्त देवताओं का पूजन कर स्वर्ण कलश के जल से राजकुमार को अभिषिक्त कर सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया जाता था, यही "यौवराज्याभिषेक" है।

संस्कृत-टीका- (भानुचन्द्र सिद्धचन्द्र टीका)

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण समतिक्रामत्सु गच्छत्सु दिवसेषु राजा तारापीडश्चन्द्रापीडस्य यौवराज्ये योऽभिषेकस्तं चिकीर्षुः कर्तुमिच्छुः प्रतीहारान्द्वारपालानुपकरणस्य- स्नानयोग्यसामग्रयाः सम्भारः समूहस्तस्य सङ्ग्रहार्थमानयनार्थमादिदेश आज्ञां दत्तवान्। समिति। समुपस्थितः सञ्जातो यौवराज्याभिषेको यस्य स तम्। कदाचित्कस्मिंश्चित्समये दर्शनार्थमवलोकनार्थमागतं प्राप्तमारूढविनयमपि। किञ्चिन्निगूढाभिप्रायः। विनीततरं विनम्रतरमिच्छन्वाञ्छञ्शुकनासः सविस्तरं सव्यासमुवाचाब्रवीत्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें-

1. समतिक्रामत्सु-सम्+अति+√क्रम+शतृ स०वि०ब०व०। दिवसेषु का विशेषण।
2. केषुचित्-किम् शब्द स०वि०ब०व०+चित्। दिवसेषु पद का विशेषण।
3. यौवराज्याभिषेकम्-युवा चासौ राजा इति कर्मधा०स०। युवराजस्य भावः (युवराज+ष्यञ्) इति यौवराज्यम्। यौवराज्ये अभिषेकः इति यौवराज्याभिषेकः सप्तमी तत्पु०। तम् यौवराज्याभिषेकम्।
4. चिकीर्षुः- √कृ+सन्+उ प्रत्यय प्र०वि०ए०व०। राजा पद का विशेषण।
5. उपकरणसंभारसङ्ग्रहार्थम्-उपक्रियन्ते एभिः इति। उप+√कृ+ल्युट्। उपकरणानां सम्भारः सम् √भृ+घञ् इति ष० तत्पु०/उपकरणसम्भारस्य सङ्ग्रहार्थम् इति षष्ठी तत्पु०।
6. आदिदेश-आ+√दिश् लिट् लकार प्र०पु०ए०व०।
7. समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम्- सम्यग् उपस्थितः यौवराज्याभिषेकः यस्य तम् इति बहु०।

8. आगतम्-आ+ √गम्+क्त द्वि॰वि॰ए॰व॰। तम् पद का विशेषण।
9. आरूढविनयम्-आरूढः (सम्प्राप्तः) विनयः येन तम् इति बहु॰। आ+√रुह्+क्त। वि+√नी+अप्। तम्।
10. विनीततरम्-विनीत+तरप् द्वि॰वि॰ए॰व॰। तम् पद का विशेषण। वि+√नी+क्त्+तरप् तद्धित प्रत्यय।
11. इच्छन्-√इष् शतृ प्र॰वि॰ए॰व॰। शुकनासः पद का विशेषण।
12. उवाच-√ब्रू लिट् ल॰प्र॰पु॰ए॰व॰।
13. शुकनासः-शुकस्य नासा इव नासा अस्य असौ शुकनासः ब॰स॰। तस्य उपदेशः शुकनासोपदेशः इति। ष॰त॰।
14. चन्द्रापीड-चन्द्रः आपीडः=शेखरो यस्य असौ चन्द्रापीडः ब॰स॰। चन्द्रापीडस्य-चन्द्रापीडः तस्य ष॰त॰।

1 **तात चन्द्रापीड। विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलञ्च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्।**

शब्दार्थ -

तात चन्द्रापीड=पुत्र चन्द्रापीड। विदित=ज्ञात। वेदितव्य=ज्ञातव्य। अधीतसर्वशास्त्रस्य= सभी शास्त्रों का अध्ययन करने वाले। ते=तुम्हारे लिए। अल्पमपि=थोड़ा सा भी। उपदेष्टव्यम्= कहने योग्य। न=नहीं। अस्ति=है। च=और। केवलम्=केवल। निसर्गत=स्वाभाविक रूप से। एव=ही। अतिगहनं=अत्यन्त घना। यौवनप्रभवम्=यौवन से उत्पन्न। तमः=अन्धकार (तमो गुण से उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार)। अभानुभेद्यम्=सूर्य के प्रकाश से भी दूर न होने वाला। अरत्नालोकोच्छेद्यम्=मणियों की चमक से भी दूर न किया जा सकने वाला। अप्रदीपप्रभापनेयम्= दीपक के प्रकाश से भी दूर न होने वाला।

अनुवाद-

पुत्र चन्द्रापीड। जानने योग्य (ज्ञातव्य) विषयों के ज्ञाता, सभी शास्त्रों के अध्येता तुम्हारे लिए थोड़ा सा भी कहने योग्य (उपदेश योग्य) नहीं है। किन्तु युवावस्था (के प्रभाव) से उत्पन्न घना अंधकार सूर्य (के प्रकाश) से भी दूर नहीं हो सकता, मणियों की चमक से भी दूर नहीं किया जा सकता और दीपक के प्रकाश से भी दूर नहीं हो सकता।

टिप्पणी -

'तात' शब्द का प्रयोग पिता एवं अपने से बड़ों के लिए सम्मानसूचक तथा पुत्र एवं आयु में अपने से छोटों के लिए स्नेह सूचक सम्बोधन के रूप में किया जाता है। 'पूज्ये पितरि पुत्रे च तातशब्दः स्मृतो बुधैः (विश्वकोष)। तातशब्दं प्रयुञ्जन्ति पूज्ये पितरि चात्मजे' इति नारदः। सब शास्त्रों एवं विद्याओं की गणना ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है। कामन्दकीय ने चार विद्याओं का उल्लेख किया है- आन्वीक्षिकी, त्रयी (वेद), वार्ता (कृषि, वाणिज्य आदि) तथा दण्डनीति (राजनीतिशास्त्र, शासनव्यवस्था एवं न्याय प्रक्रिया)। सामान्य रूप से चौदह विद्यायें कही गयी हैं- चार वेद, छः वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसाशास्त्र तथा न्याय (तर्कशास्त्र)- 'पुराणान्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।' (याज्ञ॰ 1.3)।

संस्कृत टीका - (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

तदेवाह-तातेति सम्बोधनम्। हे पुत्र चन्द्रापीड ते तवाल्पमपि स्तोकमप्युपष्टेव्यं नास्ति। तत्र हेतुमाह-अधीतेति। अधीतानि पठितानि सर्वशास्त्राणि येन स तथा तस्य। सर्वपदेन नीतिशास्त्रस्यापि परिग्रहः। अधीतशास्त्रत्वेऽपि तत्त्ववित्त्वाभावादुपदेष्टव्यमस्तीत्यत आह-विदितेति। विदितं ज्ञातं वेदितव्यं शास्त्राभिप्रायो येन तस्य। आशयमुद्घाटयति-केवलं चेति। परं निसर्गत एव स्वभावत एवाभानुभेद्यमसूर्योच्छेद्यम्। अरत्नेति। न रत्नानां मणीनामालोकेनोच्छेद्यं दूरीकर्तुं योग्यम्। अप्रदीति। न प्रदीपप्रभया गृह मणिकान्त्यापनेयं दूरीकरणीयम्। अतीति। अतिशयेन निरवधिकतया गहनमलब्धमध्यं यौवनं तारुण्यं ततः प्रभव उत्पत्तिर्यस्यैवंविधं तमोऽज्ञानम्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें-

1. विदितवेदितव्यस्य-विदितं वेदितव्यं येन तस्य इति बहु॰स॰। √विद्+क्त। √विद्+तव्यत्।
2. अधीतसर्वशास्त्रस्य-अधीतानि सर्वाणि शास्त्राणि येन तस्य इति बहु॰स॰। अधि+√इ+क्त।
3. उपदेष्टव्यम्-उप+√दिश्+तव्यत् नपुं॰प्र॰वि॰ए॰व॰। अल्पं पद का विशेषण।
4. निसर्गतः-निसर्ग+तसिल्।
5. अभानुभेद्यम्-न भानुभेद्यम् इति नञ् तत्पु॰। भानुना भेद्यम् इति तृ॰तत्पु॰। √भिद+यत्।

6. अरत्नालोकोच्छेद्यम्- न रत्नालोकोच्छेद्यम् इति नञ् तत्पु०। रत्नानाम् आलोकः इति ष०तत्पु०। रत्नालोकेन उच्छेद्यमिति तृ०तत्पु०। उत् √छिद्+यत्।

7. अप्रदीपप्रभापनेयम्- न प्रदीपप्रभापनेयम् इति नञ् तत्पु०। प्रदीपानां प्रभा इति ष०तत्पु०। प्रदीपप्रभया अपनेयम् इति तृ०तत्पु०। अप+ √नी+यत्।

8. यौवनप्रभवम्-यौवनात् प्रभवति प०तत्पु०। इति तत्। तमः पद का विशेषण।

विशेष-

प्रस्तुत अनुच्छेद में काव्यलिंग है। 'केवलं च यौवनप्रभवम्' श्लेषानुप्राणित अतिश्योक्ति अलंकार है।

अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमनञ्जनवर्ति-साध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्।

शब्दार्थ-

लक्ष्मीमदः=धन का अहंकार रूपी नशा। अपरिणामोपशमः=वृद्धावस्था में भी शान्त न होने वाला। दारुणः=भयंकर। ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्=ऐश्वर्य से उत्पन्न अहंकार रूपी रतौंधी नामक अन्धापन। अनञ्जनवर्तिसाध्यम्=अञ्जन की शलाका से भी दूर न होने वाला। अपरम्=अन्य (दूसरा)। कष्टम्=दुःखप्रद।

अनुवाद -

धन से उत्पन्न (अभिमान रूपी) मद (बहुत ही) भयंकर तथा वृद्धावस्था में (भी) शान्त नहीं होता। ऐश्वर्यरूपी तिमिर रोग से उत्पन्न अन्धत्व अत्यधिक कष्टप्रद तथा अञ्जनलिप्त शलाका से भी असाध्य होता है।

टिप्पणी -

युवावस्था से उत्पन्न अभिमान भी व्यक्ति को मदमत्त बना देता है और वह उचित अनुचित का भेद नहीं कर पाता, परन्तु वह यौवन का नशा यौवन के जाने के साथ ही अर्थात् वृद्धावस्था आने पर समाप्त हो जाता है। किन्तु धनसम्पत्ति के आने से उत्पन्न मद वृद्धावस्था में भी समाप्त नहीं होता बना रहता है।

आयुर्वेद में बताये गये अनेक प्रकार के नेत्ररोगों में तिमिर रोग सबसे भयंकर माना गया है जिसका उपचार बड़ा कठिन होता है। कहा जाता है कि बिलाव आदि की चर्बी से बनाये जाने वाले एक प्रकार के तांत्रिक अञ्जन से युक्त शलाका के प्रयोग से तिमिरान्धता (रतौंधी) दूर होती है और अन्धकार में भी पढ़ने की शक्ति प्राप्त होती है। 'अन्धकारे महाघोरे रात्रौ पठति पुस्तकम्।' रतौंधी अथवा तिमिरान्धता एक ऐसा नेत्ररोग है जिसका रोगी अन्धकार के समय अर्थात्

सन्ध्या होने के बाद रात्रि में देख नहीं सकता।

ऐश्वर्य के आने पर व्यक्ति सम्पत्ति के घमण्ड से अन्धा हो जाता है और उसकी यह देखने की शक्ति समाप्त हो जाती है कि उसे क्या करनाचाहिए और क्या नहीं। (सदसद्विवेक) क्या उचित है क्या अनुचित। ऐश्वर्य से उत्पन्न अन्धता तिमिररोग से उत्पन्न अन्धता से भी अधिक भयंकर है। क्योंकि उसका कोई उपचार नहीं है।

संस्कृत टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका) –

अपरीति। न विद्यते परिणामेनोपशमो यस्य सः। अयं भावः- परिणामेनोपशम ओषध्यादिषु प्रसिद्धः। विपरीतमत्र परिणामेऽपि। दारुणो भयावहः। कष्टं दुःखरूपमपरं तृतीयमैश्वर्यमेव तिमिरमन्धकारं तेनान्धत्वं गताक्षत्वम्। अनञ्जनेति। अञ्जनवर्तिर्बिडालादि वसाञ्जनवर्तिस्तया तिमिरान्धत्वम् विनश्यति। तदुक्तम्-'अन्धकारे महाघोरे रात्रौ पठति पुस्तकम्' इति पदं वाञ्जनवर्तेरपि न साध्यम्। न निवर्तयितुं शक्यमिति भावः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें –

1. अपरिणामोपशमः- परिणामे (परि √नम्+घञ्=परिणामः) उपशमः (उप √शम्+घञ्= शान्ति) यस्य स परिणामोपशमः (बहु॰स॰) न परिणामोपशमः इति नञ् तत्पु॰। परिणामे उपशमः इति स॰तत्पु॰।
2. लक्ष्मीमदः- लक्ष्म्याः मदः (ष॰तत्पु॰)।
3. अनञ्जनवर्तिसाध्यम्- अञ्जनस्य वर्तिः अञ्जनवर्तिः (ष॰तत्पु॰) तया साध्यम् अञ्जनवर्तिसाध्यं (तृ॰तत्पु॰) न अञ्जनवर्तिसाध्यम् अनञ्जनवर्तिसाध्यम् (नञ् तत्पु॰)।
4. ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्- ऐश्वर्यम् (ईश्वरस्य भावः- ईश्वर+ष्यञ् = ऐश्वर्यम्) एव तिमिरम् ऐश्वर्यतिमिरम् (क॰धा॰स॰) ऐश्वर्यतिमिरेण अन्धत्वम् (तृ॰तत्पु॰)।

विशेष –

'अपरिणामोपशमः दारुणः' में काव्यलिङ्ग अलंकार है। यहाँ 'अपरिणामोपशमः' विशेषण 'लक्ष्मीमद' के दारुण होने में निमित्त है। 'ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्' में ऐश्वर्य में तिमिरत्व का आरोप किया गया है अतः यहाँ 'रूपक' अलंकार है।

अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्रशम्यो विषयो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः।

शब्दार्थ -

अशिशिरोपचारहार्यः=शीतल उपचार से भी दूर न होने वाली। अतितीव्रः=अत्यन्त तीक्ष्ण। दर्पदाहज्वरोष्मा=अहंकार रूपी (दाह-ज्वर-जलाने की क्षमता वाला ज्वर) दाह ज्वर का ताप (गर्मी)। विषय विषास्वादमोहः=विषय रूपी विष के पान से उत्पन्न मूर्च्छा। सततम्=लगातार। अमूलमन्त्रशम्यः=जड़ी बूटी तथा मन्त्रों द्वारा भी शान्त न होने वाला। विषमः=भयावह। रागमलावलेपः= (विषयों में) आसक्ति रूपी कीचड़ का लेप। नित्यम्=निरन्तर। अस्नानशौचवध्यः= स्नान आदि पवित्र शुचि क्रियाओं से भी दूर न होने वाला। बलवान्=प्रबल।

अनुवाद -

अहंकार रूपी दाहज्वर का ताप शीतोपचार से भी दूर नहीं किया जा सकता, (अतः) अत्यन्त तीक्ष्ण है। विषय रूपी भयावह विषय के पान से उत्पन्न मूर्च्छा लगातार जड़ी-बूटियों और मन्त्रों से भी शान्त नहीं होती। आसक्ति (वासना) रूपी मल का प्रबल लेप नित्य स्नान आदि शुद्धि क्रियाओं से भी नष्ट नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी -

'दाहज्वर' पित्त -प्रधान एवं अत्यन्त भयावह होता है परन्तु सर्वथा असाध्य नहीं है। शीतोपचार आदि से दूर किया जा सकता है। अहंकार रूपी दाह-ज्वर का ताप तो किसी भी शीतोपचार से ठीक नहीं होता। विभिन्न प्रकार के (जहरीले साँप आदि के काटने से उत्पन्न विष) विष से उत्पन्न मूर्च्छा को दूर करने के लिए आयुर्वेद में अनेक प्रकार के मंत्रों एवं जड़ी बूटियों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है परन्तु विषय (इन्द्रिय-सुख) रूपी विष के आस्वादन से उत्पन्न मूर्च्छा जड़ी बूटियों एवं मंत्रों से भी असाध्य है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका) -

अशिशिरेति। न शिशिरैः शीतलैरुपचारैश्चन्दनादिभिर्हार्यः परिहर्तुं योग्यः। अत्यन्तमतिशयेन तीव्रः कठिनो दर्पोऽभिमानः स एव दाहज्वरस्तीव्रतापस्योष्मा धर्मः। सततेति। सततं निरन्तरं मूलमन्त्रैरगम्यो निवर्तयितुमशक्यः। मूलमन्त्रैत्युपलक्षणम्। तेन मणिमधुकरादिविषोत्तरणहेतूनां सर्वेषामपि सङ्ग्रहः। विषमः कठिनो विषयाः स्रक्चन्दनादयस्त एव विषं गरलं तस्यास्वादो भक्षणं तस्माद्यो मोहो मूर्च्छा। नित्यमिति। नित्यं सर्वदा स्नानमाप्लवः, शौचं शुचिक्रिया, ताभ्यां न वध्यो न विनाश्य एवंविधो रागो विषयाभिलाषः स एव मलः पङ्कस्तस्यावलेपः सम्पर्कः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अशिशिरोपचारहार्यः- न शिशिरोपचारहार्यः इति। नञ् तत्पु०। शिशिरोपचारेण हार्यः इति तृ०तत्पु०।

2. दर्पदाहज्वरोष्मा- दर्प एव दाहज्वरः इति दर्पदाहज्वरः। क०धा०स०। दर्पदाहज्वरस्य ऊष्मा इति ष०तप्तु०।

3. अमूलमन्त्रशम्यः- मूलानि च मन्त्राश्च मूलमन्त्राणि (द्व०स०) मूलमन्त्रैः शम्यः (√शम्+यत्-शमितुं समर्थः) मूलमन्त्रशम्यः (तृ०तत्पु०)। न मूलमन्त्रशम्यः (नञ् तत्पु०)।

4. विषयविषास्वादमोहः- विषयाः एव विषं, विषयविषस्य आस्वादः (ष०तत्पु०), विषयविषास्वादेन मोहः (तृ०तत्पु०)

5. अस्नानशौचवध्यः- न स्नानशौचवध्यः इति नञ् तत्पु०। स्नानं च शौचं च इति द्वन्द्व तत्पु०। स्नानशौचाभ्यां वध्यः इति तृ०तत्पु०।

6. रागमलावलेपः- रागः एव मलं रागमलं (क०धा०) (√रञ्ज+घञ्) रागमल स्यावलेपः इति ष०तत्पु० (अव √लिप् + घञ्)।

विशेष -

'दर्पदाहज्वर' में 'रूपक' अलंकार है क्योंकि यहाँ 'दर्प' में 'दाहज्वर' का आरोप किया गया है तथा सामान्य दाहज्वर से इसमें वैशिष्ट्य बताया गया है, अतः यहाँ 'अधिकारूढ़वैशिष्टयरूपक' अलंकार है। इसी प्रकार 'विषयविषास्वादमोहः' तथा 'रागमलावलेपः' में भी रूपक अलंकार है। 'विषयविषा--' में 'विष' की एक बार उसी क्रम में आवृत्ति होने से 'छेकानुप्रास' भी है।

अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसन्निपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे।

शब्दार्थ -

राज्यसुखसन्निपातनिद्रा = राज्यसुखों के समूह से उत्पन्न निद्रा। अजस्रम्=सदा। अक्षपवासानप्रबोधा=(क्षपा=रात्रि। अवसान=समाप्ति। प्रबोधा=जागरण। अ=नहीं) रात्रि की समाप्ति पर भी न टूटने वाली। घोरा=भयानक। भवति=होती है। इति=इसी कारण। विस्तरेण=विस्तारपूर्वक। अभिधीयसे=कहा जा रहा है।

अनुवाद -

सदा राज्यसुखों के समूह से उत्पन्न घोर निद्रा रात्रि की समाप्ति पर भी नहीं खुलती। इसलिए विस्तार से तुम्हें कहा जाता है।

टिप्पणी -

'केवलञ्च निसर्गत-- निद्रा भवति' तक अमात्य शुकनास द्वारा सभी ज्ञातव्य विषयों के ज्ञाता, सब शास्त्रों के अध्येता तथा अत्यन्त विनम्र राजकुमार चन्द्रापीड को दिये जाने वाले उपदेश की आवश्यकता अथवा उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। तात्पर्य यही है कि यौवन, लक्ष्मी और ऐश्वर्य महान ज्ञानी एवं विनीत तथा उच्चकुलोत्पन्न व्यक्तियों को भी दिग्भ्रमित कर देती है।

संस्कृत टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)-

अजस्रमिति। अजस्रं निरन्तरं न विद्यते क्षपावसाने रात्र्यन्ते प्रबोधो विनिद्रत्वं यस्यामेतादृशी घोरा च राज्यस्याधिपत्यस्य यत्सुखं सति तस्य सन्निपातः सङ्घातः स च एव निद्रा प्रमीला भवतीति हेतोर्विस्तरेण वारम्वारमभिधीयसे। वक्तव्योऽसीत्यर्थः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अक्षपावसानप्रबोधा-न क्षपावसानप्रबोधा इति नञ् तत्पु॰। क्षपायाः अवसानम् इति ष॰तत्पु॰। क्षपावसाने प्रबोधः इति स॰तत्पु॰। क्षपावसानप्रबोधः यस्याम् सा इति बहु॰। राज्यसुखसन्निपात निद्रा पद का विशेषण।
2. राज्यसुखसन्निपातनिद्रा-राज्यस्य सुखानि इति ष॰तत्पु॰। राज्यसुखानां सन्निपात इति ष॰तत्पु॰। राज्यसुखसन्निपात एव निद्रा। सन्निपातज्वरः तद्वत् प्राणहानिकरी निद्रा (क॰धा॰)।
3. अभिधीयसे-अभि √धा+यक् (कर्मणि) लट् म॰पु॰ए॰व॰।

विशेष-

'राज्यसुखसन्निपातनिद्रा' में 'अधिकारूढवैशिष्ट्यरूपक' अलंकार है।

3 **गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वंचेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा। सर्वाविनयमानामेकैकमप्येषामायतनम्, किमुत समवायः।**

शब्दार्थ -

गर्भेश्वरत्वम्= जन्म से ही (उत्तराधिकार से प्राप्त) प्राप्त धन-सम्पत्ति का स्वामित्व। अभिनवयौवनत्वम्=नवीन युवावस्था अर्थात् युवावस्था का प्रारम्भ।

अप्रतिमरूपत्वम्=अद्वितीय सौन्दर्य। अमानुषशक्तित्वम्= अलौकिकशक्तिसम्पन्नता। च=और। इति= इस प्रकार। खलु=निश्चय ही। इयं=यह। महती=बहुत विशाल। अनर्थपरम्परा=आपत्तियों की श्रृंखला। एषाम्=इनमें से। एकैकमपि= (स्वतन्त्र रूप से) एक-एक भी। सर्वाविनयानाम्=सभी धृष्टताओं का। आयतनम्=घर (आश्रय स्थान)। समवायः=समूह। किमुत=क्या कहना।

अनुवाद -

जन्म से ही प्राप्त धन संपन्नता, नूतन युवावस्था, अद्वितीय सुन्दरता और अलौकिक शक्तियुक्तता इस प्रकार यह बहुत बड़ी आपत्तियों की श्रृंखला है। इनमें से एक-एक भी सब प्रकार की उद्दण्डताओं का निवास-स्थान है, फिर समूह की तो बात ही क्या।

संस्कृत-टीका-

अपरामप्यनर्थपरम्परां प्रदर्शयन्नाह-गर्भेश्वरेति। गर्भेश्वरत्वं बाल्यावधिमीश्वरत्वम्, अभिनवयौवनत्वं सर्वाधिकं तारुण्यम्, अप्रतिमं प्रतिनिधिशून्यं रूपं सौन्दर्यम्, अमानुषशक्तित्वं न विद्यते मानुषेषु मनुष्येषु यैवंविधा शक्तिः सामर्थ्यं यस्मिंस्तस्य भावस्तत्त्वम्। चकारः समुच्चयार्थः। इति समाप्तौ। खलु निश्चयेन। इयं महती गरीयसी सर्वा समग्रानर्थपरम्परा कष्टपरम्परा। एषां पूर्वोक्तानामेकैकमप्यविनयानां दुर्बुद्धीनामायतनमास्थानम्, किमुत समवायः। एतेषां समुदायस्य दुर्बुद्धिजनकत्वे किं पुनर्भण्यते। तदुक्तं-'यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमनवस्थानं किं पुनस्तच्चतुष्टयम्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें-

1. गर्भेश्वरत्वम्-गर्भतः एव ईश्वरः, तस्य भावः इति गर्भेश्वरत्वम्।
2. अभिनवयौवनत्वम्-यूनः भावः यौवनम्, अभिनवं यौवनं यस्य सः अभिनवयौवनः (बहु०) तस्य भावः अभिनवयौवनत्वम्।
3. अप्रतिमरूपत्वं- न विद्यते प्रतिमा यस्य तद् अप्रतिमम् (नञ्) अप्रतिमरूपः (बहु०) तस्य भावः।
4. अमानुषशक्तित्वम्-मनुष्यस्य इयं मानुषी, मानुषी चासौ शक्तिः मानुषशक्तिः (क०धा०) नास्ति मानुषशक्तिः यस्मिन् स अमानुषशक्तिः (नञ्) तस्य भावः।

विशेष-

यहाँ हेतु और समुच्चय अलंकार है।

(3) **यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः।**

शब्दार्थ-

च=और। प्रायः=बहुधा। शास्त्रजल=शास्त्र रूपी जल। प्रक्षालन=धोने (से)। निर्मलापि=स्वच्छ हुयी भी। बुद्धिः=मति। यौवनारम्भे=तारुण्य के प्रारम्भिक काल में। कालुष्यं=मलिनता को। उपयाति=प्राप्त करती है। अनुज्झितधवलतापि=स्वच्छता को छोड़े बिना भी। यूनां=युवकों की। दृष्टिः=दृष्टि। सरागैव=अनुरागयुक्त। भवति=हो जाती है।

अनुवाद -

और युवावस्था के प्रारम्भिक काल में अक्सर शास्त्र रूपी जल द्वारा धोने से स्वच्छ हुयी भी बुद्धि मलिनता को प्राप्त हो जाती है। युवकों की दृष्टि धवलता (उज्ज्वलता) को छोड़े बिना भी अनुरागयुक्त (लालिमायुक्त) हो जाती है।

टिप्पणी-

पहले संक्षेप में निर्दिष्ट की गयी अनर्थ-परम्परा में से सर्वप्रथम यौवन को लक्ष्य करके उपर्युक्त बात कही गयी है।

संस्कृत-टीका-

अथ यौवनस्यापि दुर्बुद्धिजनकत्वं प्रदर्शयन्नाहयौवनेपि। यौवनारम्भे तारुण्यप्रारम्भे प्रायो बाहुल्येन शास्त्रमेव जलं पानीयं तेन निर्मला निर्गतो मलोऽबोधो यस्या एवंभूतापि बुद्धिः कालुष्यं बुद्धिवैपरीत्यमुपयाति प्राप्नोति। अन्विति। अनुज्झिताऽपरित्यक्ता धवलता श्वेतता ययैर्वंविधापि यूनां तरुणानां दृष्टिः। सरागैवेति सह रागेण वर्तमानैव भवति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. यौवनारम्भे=यौवनस्य आरम्भे (ष०तत्पु०)
2. शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मला-शास्त्रमेव जलं शास्त्रजलम् (क०धा०) शास्त्रजलेन प्रक्षालनं शास्त्रजलप्रक्षालनम् (तृ०तप्तु०), निर्गतं मलं यस्याः सा निर्मला (बहु०) प्रक्षालनेन निर्मला (तृ०तप्तु०)

3. कालुष्यं-कलुषस्य भावः इति √कलुष+ष्यञ्।

4. उपयाति-उप+ √या लट् ल०प्र०पु०ए०व०।

5. अनुज्झितधवलता-न उज्झिता इति नञ् तत्पु०। धवलस्य भावः इति धवलता (ष०तत्पु०)। अनुज्झिता धवलता यया सा इति बहु०।

6. सरागा- रागेण सह वर्तमाना।

7. दृष्टिः-दृश्+क्तिन् प्र०ए०व०।

विशेष-

'शास्त्रजल' में रूपक अलंकार है। 'निर्मलाऽपि कालुष्यमुपयाति' में 'विरोधाभास' तथा 'सरागैव' में श्लेष अलंकार है।

अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः।

शब्दार्थ-

च=और। समुद्भूत=उठी हुई (तेज़ हवा से धूल ज़मीन से ऊपर वातावरण में उठ जाती है।) रजो=धूलि। भ्रान्ति=चक्कर (भ्रमण)। वात्या=बवण्डर के। इव=समान। प्रकृतिः=स्वभाव। यौवनसमये=युवावस्था में। आत्मेच्छया=अपनी इच्छा से। पुरुषम्=पुरुष को। अतिदूरम्=बहुत दूर। अपहरति=ले जाती है।

अनुवाद -

जिस प्रकार आँधी धूलि के द्वारा भ्रान्ति उत्पन्न करके सूखे पत्ते को अपनी इच्छा से बहुत दूर ले जाती है। उसी प्रकार युवावस्था में प्रकृति (स्वभाव) रजोगुण से भ्रान्ति उत्पन्न करके पुरुष को अपनी इच्छा से बहुत दूर तक ले जाती है।

टिप्पणी-

जिस प्रकार आँधी सूखे पत्ते को उड़ाकर ले जाती है, वैसे ही युवावस्था (युवावस्था में मनुष्य का स्वभाव रजोगुणप्रधान हो जाता है) में मनुष्य की प्रकृति उसे रजोगुण के चक्कर में अनचाहे विषयों की ओर ले जाती है।

संस्कृत-टीका -

आत्मेति। आत्मेच्छया स्वेच्छया यौवनसमये तारुण्यक्षणे प्रकृतिः पुरुषं दूरमपहरति। दूरं परिनयतीत्यर्थः। अस्मिन्नर्थे उपमानमाह-शुष्कमिति। वातानां समूहो वात्या वातकलिकोच्यते। शुष्कपत्रं यथापहरति। उभयोः

साम्यमाह-समुद्भूतेति। समुद्भूता रजोगुणेन भ्रान्तिर्भ्रमो यस्याम्। पक्षे रजसां रेणूनां भ्रमो यस्याम्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अपहरित-अप √हृ लट् ल० प्र० पु० ए० व०।
2. वात्या- (स्त्री) वात+य+टाप्।
3. शुष्कपत्रम् -शुष्कं पत्रं क०धा०।
4. समुद्भूतरजोभ्रान्तिः- वात्यापक्षे-समुद्भूतानां रजसां धूलीनां भ्रान्तिः यस्यां सा (बहु०); प्रकृतिपक्षे-समुद्भूतस्य रजसः रजोगुणस्य भ्रान्तिः यस्यां सा (बहु०)।
5. आत्मेच्छया-आत्मनः इच्छा आत्मेच्छा (ष०तत्पु०) तया।
6. यौवनसमये-यौवनस्य समयः यौवनसयमः (ष०तत्पु०) तस्मिन्।
7. प्रकृतिः- प्र० √कृ+क्तिन्।

विशेष-

यहाँ श्लेष तथा उपमा अलंकार है।

इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमतिदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः।

शब्दार्थ-

च=और। इन्द्रियहरिणहारिणी=इन्द्रियों रूपी हरिणों को हरने वाली। इयम्=यह। सततम्=निरन्तर। अतिदुरन्ता=अत्यन्त दुष्परिणामा (अतिदुःखपूर्ण अन्त वाली)। उपभोगमृगतृष्णिका= (विषयों के) उपभोग सम्बन्धी मृगतृष्णा। नवयौवनकषायितात्मनः= नवीन (अभी-अभी प्राप्त) युवावस्था से परिवर्तित। सलिलानि इव=जलों के समान। तानि एव=वे ही। आस्वाद्यमानानि=आस्वादन किये जाते हुए। विषयस्वरूपाणि=विषयों का स्वरूप। मनसः=मन को। मधुरतराणि=बहुत मधुर। आपतन्ति=प्रतीत होते हैं।

अनुवाद -

और निरन्तर इन्द्रिय रूपी हरिणों को आकृष्ट करने वाली यह (विषयों के) उपभोग रूपी मृगतृष्णा बहुत बुरे परिणाम वाली होती है। (फिर भी) नवीन युवावस्था से कसैले अन्तः करण वाले व्यक्ति के मन को, भोगे जाते हुए उन्हीं

विषयों का स्वरूप बहुत मधुर लगता है, जिस प्रकार (कसैली जीभ वाले व्यक्ति को जल बहुत मीठा लगता है (अर्थात् जिस प्रकार (आँवला आदि खाने से) कसैले स्वाद वाले व्यक्ति को वही (पहले पिये हुए) जल आस्वादन करने पर पहले से अधिक मीठे लगते हैं) उसी प्रकार नवयौवन से कसैले अन्तःकरण वाले मन को उन्हीं विषयों के स्वरूप (जो पहले बाल्यकाल में भी थे) आस्वाद में पहले से अधिक मधुर लगते हैं।

टिप्पणी -

मरुस्थल (रेगिस्तान) में गर्मियों की दोपहर में कहीं-कहीं रेत की स्थिति (आकृति) ऐसी हो जाती है सूर्य की तीव्र किरणें उस पर पड़कर जल (के वहाँ पर होने) का भ्रम उत्पन्न कर देती हैं और इस मरीचिका को जल समझकर प्सासे हरिण बार-बार वहाँ आते हैं। अन्त में गर्मी और प्यास के कारण समाप्त हो जाते हैं, जिस प्रकार यह मृग-मरीचिका हरिणों को बार-बार अपनी ओर आकृष्ट करके नष्ट कर देती है उसी प्रकार ऐन्द्रिक सुख सम्बन्धी विषयों के उपभोग रूपी मृग तृष्णा हरिणों के समान नवयुवकों के मन को अपनी ओर आकर्षित करती है और दुष्परिणामशीला (बुरे अन्त वाली) होती है क्योंकि विषयोपभोग के चक्कर में उलझे हुए नवयुवक अपना नैतिक विकास नहीं कर पाते और अंत में अपना सर्वनाश (धन, चरित्र, आदर सम्मान, स्वास्थ्य आदि का) कर बैठते हैं।

'नवयौवन.....' जिस प्रकार आँवला, हरड़ आदि खाने से जीभ का स्वाद कसैला हो जाने पर जल पीने से वह मीठा लगता है, जबकि स्वभाव से जल मीठा नहीं होता, उसी प्रकार नवीन युवावस्था के कारण विषयों के अनुरक्त युवकों के मन को भोग्य पदार्थ मधुर (आह्लादकारक) प्रतीत होते हैं जबकि वास्तव में विनाशकारी होते हैं।

संस्कृत-टीका-

इन्द्रियेति। इन्द्रियाण्येव करणान्येव हरिणाः कुरङ्गास्तेषां हारिणी हरणशीलैतादृश्युपभोगोऽङ्गनादिकः स एव मृगतृष्णिका मरुमरीचिकेयं सततं निरन्तरम्। सुखाभिमानोत्पादनाद्दुरन्ता दुःखावसाना नवेति। नवयौवनेन प्रत्यग्रतारुण्येन कषायितं विपरिवर्तितमात्मान्तकरणं यस्यैवंभूतस्य पुरुषस्यास्वाद्यमानानि तान्येव विषयस्वरूपाणि मनसश्चेतसो मधुरतराण्यापतन्ति। मधुराण्येव भवन्तीत्यर्थः। अत्रैव दृष्टान्तमाह-सलिलेति। यथा कषायद्रव्येण हरीतक्यादिना मधुराण्यपि जलानि मधुरतराणि स्युः। 'आत्मानः' इति प्रामादिकः पाठः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें-

1. हरति इति हारिणी (√हृ+ णिनि+ङीप्) इन्द्रियाण्येव हरिणाः इन्द्रियहरिणाः (क०धा०) तेषां हारिणी (ष०तत्पु०)।
2. उपभोगमृगतृष्णिका-उपभोगः एव मृगतृष्णिका (क०धा०)।
3. नवयौवनकषायितात्मनः-नवं च तद् यौवनं नवयौवनम् (क०धा०)। नवयौवनेन कषायितः आत्मा यस्य सः (बहु०) तस्य।
4. आस्वाद्यमानानि- आङ् +√स्वद्+णिच्+शानच् नपुं०प्र०वि० ब०व०। सलिलानि तथा विषयस्वरूपणि का विशेषण।
5. मधुरतराणि-अतिशयेन मधुराणि (मधुर+तरप्) प्र०वि०ब०व०।
6. आपतन्ति-आ √पत् लट् प्र०पु०ब०व०।

विशेष -

'इन्द्रियहरिणहारिणी.....' में 'रूपक' तथा 'नवयौवनक षायितात्मनश्च....' में उपमा अलंकार है।

नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

शब्दार्थ-

च=और। विषयेषु=विषय भोगों में। उन्मार्गप्रवर्तकः=कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करने वाली। अत्यासङ्गः=अत्यधिक लिप्तता (आसक्ति)। दिङ्मोह इव=दिग्भ्रान्ति (दिशा ज्ञान का न होना) के समान। पुरुषं=पुरुष को। नाशयति=नष्ट कर देती है।

अनुवाद-

जिस प्रकार मार्गान्तर में पहुँचा देने वाला दिशाओं का भ्रम व्यक्ति को नष्ट कर देता है उसी प्रकार कुमार्ग में प्रवृत्त करने वाले विषयों में अत्यधिक आसक्ति मनुष्य का नाश कर देती है।

संस्कृत-टीका-

विषयेषु स्रक्चन्दनवनितादिव्यत्यासङ्गोऽत्यासक्तिः पुरुषमात्मानं नाशयति। क इव। दिङ्मोहो दिग्भ्रान्तिरिव। उभयोः सादृश्यमाह-उन्मार्ग इति। उन्मार्गोऽपथो विरुद्धाचारश्च तत्र प्रवर्तकः प्रेरकः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. नाशयति- √नश् लट् ल०प्र०पु०ए०व०।

2. दिङ्मोह:- दिशां मोह: इति षष्ठी तत्पु०। √मुह्+घञ्।

3. उन्मार्गप्रवर्तक:- उन्मार्गे प्रवर्तक: इति स०तत्पु०।

4. अत्यासङ्ग:- अतिशयेन आसङ्ग: इति तृ०तत्पु०। अति+आ √सञ्ज्+घञ्।

विशेष - उपमा अलंकार है।

भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।

शब्दार्थ-

भवादृशा=आप जैसे। एव=ही। उपदेशानाम्=उपदेशों के। भाजनानि=योग्य पात्र। भवन्ति=होते हैं। हि=क्योंकि। स्फटिकमणौ=(स्वच्छ) स्फटिक मणि। रजनिकर=चन्द्रमा (की)। गभस्तय:=किरणें। इव=समान। उपदेशगुणाः=उपदेश के गुण। अपगतमले=स्वच्छ=निर्मल (मलरहित)। मनसि=मन में। सुखेन=सरलता से। विशन्ति=प्रवेश करते हैं।

अनुवाद-

आप जैसे (व्यक्ति) ही उपदेशों के पात्र (योग्य) होते हैं क्योंकि उपदेश के गुण निर्मल अन्त:करण में उसी प्रकार अनायास प्रवेश करते हैं जैसे स्फटिक मणि में सूर्यकिरणें।

संस्कृत-टीका-

ततः किमित्यत आह-भवादृशा इति। उपदेशानां शिक्षाणां भाजनानि पात्राणि भवादृशा भवत्सदृशा एव भवन्ति नान्य इति भावः। उपदेशगुणाः शिक्षागुणाः सुखेनानायासेन विशन्ति प्रवेशं कुर्वन्ति। तस्मिन्क इव। स्फटीति। स्फटिकमणौ रजनिकरश्चन्द्रस्तस्य गभस्तयः किरणास्तद्वदिव।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अपगतमले- अपगत: मल: यस्मात् तस्मिन् बहु०। मनसि तथा स्फटिकमणौ पदों का विशेषण।

2. रजनिकरगभस्तय:-रजनीं करोति इति रजनिकर: बहु० अथवा रजन्यां कराः यस्य स: रजनिकर: बहु०। रजनिकरस्य गभस्तय: ष०तत्पु०।

3. उपदेशगुणा:- उपदेशानां गुणा: ष०तत्पु०।

विशेष - उपमा अलंकार है।

(5) गुरुवचनम् अमलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति।

शब्दार्थ-

सलिलमिव=जल के समान। अभव्यस्य=दुष्ट (अशिष्ट) जनों के। श्रवणस्थितम्=कान में गया हुआ। अमलम्=स्वच्छ। अपि=भी। गुरुवचनम्=गुरु का कथन। महत्=बहुत अधिक। शूलम्=कष्ट। उपजनयति=उत्पन्न करता है। तु=परन्तु। इतरस्य=दूसरे (सज्जनपुरुष) के। करिणः=हाथी के। शङ्खाभरणम् इव=शंख के आभूषण के समान। आननशोभासमुदयम्=मुख के सौन्दर्य समूह को। अधिकतरम्=और अधिक। उपजनयति=बढ़ा देता है।

अनुवाद -

गुरु का कल्याणकारी वचन भी अशिष्ट (व्यक्ति) के कान में पड़ने पर जल की भाँति बड़ी पीड़ा उत्पन्न करता है, किन्तु (वही वचन) अन्य (शिष्ट व्यक्ति) के मुख की शोभा-राशि को हाथी के शंखाभूषण की भाँति और अधिक बढ़ा देता है।

टिप्पणी -

जल कितना भी स्वच्छ हो वह कान में जाकर कष्ट को ही उत्पन्न करता है उसी प्रकार गुरु द्वारा दिया गया अत्यन्त सदुपदेश भी दुष्ट व्यक्ति के स्वभावानुकूल न होने के कारण कष्ट को ही उत्पन्न करता है। हाथियों के दृष्टिदोष को दूर करने के लिए उनके मस्तक पर शंखों के बने आभूषण पहनाये जाते हैं। (कहीं-कहीं नज़र लगने से बचाने के लिए शंखाभूषण कान में पहनाये जाते हैं ऐसा भी उल्लेख मिलता है।) गुरु का उपदेश भी अनुचित दृष्टिकोण को सुधार कर कर्त्तव्य को पहचानने की सुलझी हुई दृष्टि प्रदान करता है।

संस्कृत-टीका -

दोषे सति किं स्यादित्याह-गुरुवचनमिति, गुरुवचनं हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टा गुरुस्तस्य वचनं वाक्यममलमपि निर्मलमप्यभव्यस्यासाधोः श्रवणस्थितं कर्णकोटरगतं सन्महच्छूलमुपजनत्युत्पादयतीत्यर्थः। अत्रार्थेऽनुभवसिद्धं दृष्टान्तमाह-सलिलेति। यथा सलिलं पानीयमतिस्वच्छमपि कर्णगतं महाव्यथाजनकं स्यात्। दोषाभावे त्वाह- इतरस्य त्वधिकतरमाननशोभामुदयमुपजनयति विधाति। क इव। शङ्खो जलजस्तस्याभरणं भूषणं करिण इव हस्तिन इव। हस्तिनां

दृष्टिदोषबाधनार्थं शङ्खाभरणं कर्णे बध्यत इति लोकरीतिः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें –

1. गुरुवचनम्–गुरोः वचनं (ष॰तत्पु॰)।
2. अमलम्–न विद्यते मलं यस्मिन् तत् नञ्, बहु॰।
3. श्रवणस्थितम्–श्रवणे स्थितं स॰तत्पु॰।
4. उपजनयति–उप √जन्+णिच् लट् लकार प्र॰पु॰ए॰व॰।
5. अभव्यस्य–न भव्यः इति अभव्यः नञ् तत्पु॰ तस्य।
6. करिणः– करः शुण्डादण्डः अस्य अस्ति इति करिन् ष॰ए॰व॰।
7. आननशोभासमुदयम्–शोभायाः समुदयः शोभासमुदयः ष॰तत्पु॰ आननस्य शोभासमुदयः ष॰तत्पु॰ तम्।

विशेष – उपमा अलंकार है।

6 **हरति च सकलमतिमलिनमप्यन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव गुरूपदेशः। प्रशमहेतुर्वयः परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजलालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयति।**

शब्दार्थ –

च=और। प्रदोषसमय=प्रदोषकालीन। निशाकर=चन्द्रमा। इव=के समान। अन्धकारम्=अंधेरे को। गुरुपदेशः=गुरु का उपेदश। सकलम्=सम्पूर्ण। अतिमलिनमपि=अत्यन्त मलिन भी। दोषजातं=दोषसमूह को। हरति=दूर कर देता है। प्रशमहेतुः=(अन्तःकरण की) शान्ति का कारण। तदेव=उस (दोषसमूह) को ही। गुणरूपेण=गुणों के रूप में। परिणमयति=परिवर्तित कर देता है। शिरसिजजालम्=केशसमूह को। अमलीकुर्वन्=सफेद करती हुयी। पलितरूपेण= श्वेत रूप में। वयः परिणाम= (आयु का परिणाम=अंत) वृद्धावस्था।

अनुवाद –

गुरु का उपदेश सन्ध्याकालीन चन्द्रमा के समान दोषों से उत्पन्न सम्पूर्ण अतिमलिन अन्धकार को दूर कर देता है। अन्तःकरण की शान्ति का कारण गुरु का उपदेश उस (दोषसमूह) को ही गुणों में परिवर्तित कर देता है, जैसे वृद्धावस्था केशसमूह को सफेद करती हुयी उन्हीं (बालों) को श्वेत रूप में परिणत कर देती है।

टिप्पणी -

तात्पर्य यह है कि बालों का पकना बुरा है किन्तु वृद्धावस्था में वह बुरा नहीं माना जाता बल्कि उसकी शोभा होती है उसी प्रकार काम, क्रोध आदि दोष हैं किन्तु गुरु का उपदेश काम को धर्मार्जन में, क्रोध को दंड में और लोभ आदि को स्वर्गादि की प्राप्ति में लगाकर उक्त दोषों को गुणों में परिवर्तित कर देता है।

संस्कृत-टीका-

अतिमलिनमतिश्यामं दोषजातं दूषणसमूहमन्धकारमिव हरति दूरीकरोति। क इव प्रदोषसमयनिशाकर इव यामिनीमुखचन्द्रोदय इव। प्रकारान्तरेणाह-प्रशम इति। प्रशमोऽन्तरिन्द्रियनिग्रहस्तद्धेतुर्गुरूपदेशः शिरसिजजालं शिरोरुहभारममलीकुर्वन्गुरुरूपेण तदेव परिणमयति परिपाकं नयति। का इव। वयः परिणाम इवावस्थापरिणतिरिव।

व्याकरणात्मक-विशेषतायें -

1. हरति- √हृ लट् लकार प्र॰पु॰ए॰व॰।
2. प्रदोषसमयनिशाकरः- प्रदोषश्चासौ समयः प्रदोषसमयः (क॰धा॰)। निशां करोति इति, प्रदोषसमये निशाकरः (स॰तत्पु॰)।
3. दोषजातम्-दोषानां जातम् ष॰तत्पु॰।
4. गुरोपदेशः- गुरोः उपदेशः ष॰तत्पु॰।
5. प्रशमहेतुः- प्रशमस्य हेतुः (ष॰तत्पु॰)।
6. वयः परिणामः। वयसः परिणामः (ष॰तत्पु॰)।
7. शिरसिजजालम्- शिरसि जायन्ते ये इति शिरसिजाः। तेषाम् जालम् ष॰तत्पु॰।
8. अमलीकुर्वन्-अमल शब्द च्वि प्र॰ + √कृ+शतृ। प्र॰वि॰ए॰व॰।
9. परिणमयति- परि √नम्+णिच् लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।

विशेष-

'प्रशमहेतुः' और 'अमलीकुर्वन्' पद दोनों पक्षों में श्लिष्ट हैं अतः यहाँ श्लेषानुप्राणित उपमा है।

अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम्।

शब्दार्थ - च=और। अनास्वादितविषयरसस्य=विषय (भोग) रूपी रस का आस्वादन न करने वाले। ते=तुम्हारे (लिए)। अयमेव=यही। उपदेशस्य=उपदेश -

का। कालः=समय है। हि=क्योंकि। कुसुमशर=कामदेव (के)। शर=बाण। प्रहार=आघात। जर्जरित=खण्डित। हृदये=हृदय में। उपदिष्टम्=दिया गया उपदेश। जलमिव=जल के समान। गलति=बह जाता है (नष्ट हो जाता है)।

अनुवाद -

और विषय भोगरूपी रस का आस्वादन न करने वाले तुम्हारे लिए यही उपदेश का समय है। क्योंकि कामदेव के बाणों से खण्डित (टूटे हुए या छिद्रयुक्त) हृदय में दिया गया उपदेश पानी के समान निकल जाता है।

टिप्पणी -

जिस प्रकार टूटे हुए या अनेक छिद्रों वाले पात्र में जल को रोक पाना असम्भव है उसी प्रकार जो हृदय कामदेव के बाणों से प्रभावित हो चुका हो उसमें उपदेश स्थिर नहीं रह सकता। अर्थात् सभी प्रकार के विषय-भोगों में अनासक्त हृदय में उपदेश अधिक प्रभावी होता है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

तन्निदानमेव प्रथमे वयसि किमुपदेशेनेत्यत आह-अयमिति। अयमेव नापरस्तत तवोपदेशस्य कालः शिक्षाप्रदान समयः। अत्रार्थे हेतुं प्रदर्शयन्नाह-अनास्वादीति। न विद्यत आस्वादोऽनुभवो यस्यैवंविधो विषयरसो यस्य यथा तस्य।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अनास्वादितविषयरसस्य- न आस्वादिताः अनास्वादिताः (नञ्) विषयाः एव रसाः विषयरसाः (क॰धा॰) अनास्वादिताः विषयरसाः येन सः (बहु॰) तस्य।

2. कुसुमशरप्रहार जर्जरिते- कुसुमाः एव शराः सन्ति यस्य सः इति कुसुमशरः बहु॰। कुसुमशरस्य शराः इति ब॰तत्पु॰। कुसुमशरशराणां प्रहाराः इति ष॰तत्पु॰। कुसुमशरशरप्रहारैः जर्जरिते इति तृ॰तत्पु॰। 'हृदये' पद का विशेषण।

3. गलति- √गल् स्रवणे लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।

विशेष- कुसुमशरशर..... में अनुप्रास और 'जलमिव...' में उपमा अलंकार है।

अकारणञ्च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं वा विनयस्य। चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः? किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वाडवानलो वारिणा?

शब्दार्थ -

दुष्प्रकृतेः=दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति का। अन्वयः=वंश। वा=अथवा। श्रुतं=शास्त्र (विद्या)। विनयस्य=विनम्रता का। अकारणं=कारण नहीं। भवति=होता। चन्दनप्रभवो=चन्दन से उत्पन्न। अनलः=अग्नि। किं=क्या। न=नहीं। दहति=जलाती है। वा=अथवा। किं=क्या। प्रशमहेतुना=शान्ति के हेतुभूत। वारिणा=जल से। अपि=भी। वाडवानलो=वाडवाग्नि (समुद्र के भीतर रहने वाली आग)। किं=क्या। प्रचण्डतरी=और अधिक प्रबल। न=नहीं। भवति=होती।

अनुवाद-

दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति का कुल अथवा विद्या विनम्रता का कारण नहीं (अपितु अविनय का है।) क्या चन्दन से उत्पन्न अग्नि जलाती नहीं है। बुझाने में समर्थ जल के द्वारा भी क्या समुद्राग्नि अधिक प्रबल नहीं हो जाती?

टिप्पणी-

दुष्ट स्वभाव मनुष्य को विनम्र नहीं होने देता। उच्चकुलोत्पन्न, शास्त्रज्ञ व्यक्ति को भी उपदेश आदि से विनीत नहीं किया जा सकता यदि उसका स्वभाव ही उद्दण्ड है क्योंकि 'अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते' इस न्याय से यह (दुष्ट स्वभाव) सब गुणों को दबाकर अपना ही प्रभाव दिखाता है।

कहा जाता है कि एक बार और्व नामक मुनि अग्नि में अपना ऊरु (जाँघ) डालकर कुश से मन्थन करने लगे। तत्पश्चात् उनके ऊरू से अग्नि उत्पन्न हुयी जो विश्व को जलाने लगी। ब्रह्मा जी ने यह देखकर किसी प्रकार मुनि को शान्त किया और उस अग्नि को समुद्र गर्भ में स्थित बडवा (घोड़ी) के मुँह में स्थापित करके उसके खाने के लिए समुद्र का जल निर्दिष्ट कर दिया (मत्स्य पुराण)।

यह तो पौराणिक कथा है परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर वाडवाग्नि से अभिप्राय संभवतः समुद्र के भीतर पाये जाने वाले तेल के भंडारों से है क्योंकि तेल में लगी आग पानी से नहीं बुझती। रेत या मिट्टी से बुझती है।

संस्कृत-टीका-

दोषान्तरमाह-अकारणं चेति। उपशमादिकार्यजनकं न भवतीत्यर्थः। ननु मदनशरप्रहारजर्जरितहृदस्योपदेशाभावेऽप्युपदेशकार्यं प्रशमादिकं सर्वमन्वयो वंशः, श्रुतं च शास्त्रम्, ताभ्यामेव भविष्यतीत्याशयेनाह-दुष्प्रकृतेरिति।

दुष्प्रकृतेर्दुरात्मनस्ता- दृशहृदयस्यान्वयः श्रुतं चाविनयस्य हेतोर्भवति। न तु विनयायेत्यर्थः। ननु सुवंशजस्य कथमविनये प्रवृत्तिरित्यत आह-चन्दनेति। चन्दनं मलयजं तस्मात्प्रभवो यस्यैवंभूतोऽनलो वह्निः किं न दहति न भस्मीकरोति। परस्परसङ्घर्षदोषे सति चन्दनात्समुत्थितोऽग्निर्दहत्येवेति। ननु प्रशमहेतुभूताच्छ्रुतात्कथमविनयोत्पत्तिरित्यत आह-किं वेति। प्रशमहेतुनापि वारिणा किं वाडवानलो वाडवाग्निस्तोयधेः प्रादुर्भवति, सर्वलोकविनाशाय सर्वदा महासमुद्रे तिष्ठति, यस्य वाडवामुख इति प्रसिद्धिः न प्रचण्डतरीभवति प्रबलतरो न स्यात्।

व्याकरणात्मक-विशेषतायें-

1. दुष्प्रकृतेः-दुष्टा प्रकृतिः यस्य तस्य इति बहु०।
2. अन्वयः- अनु √इण्+अच्। पुं०प्र०वि०ए०व०।
3. श्रुतम्- √श्रु+क्त नपुं०प्र०वि०ए०व०।
4. चन्दनप्रभवः- चन्दनात् प्रभवः इति पं० तत्पु०। 'अनलः' पद का विशेषण।
5. प्रशमहेतुना-प्रशमस्य हेतुः इति तेन ष०तत्पु०। वारिणा-पद का विशेषण।
6. प्रचण्डतरीभवति- प्रकर्षेण चण्डः प्रचण्डः (प्रादि) अतिशयेन प्रचण्डः प्रचण्डतरः (प्रचण्ड+तरप्) अप्रचण्डः प्रचण्डतरो भवति प्रचण्डतर+च्वि √भू लट्। प्र०पु०ए०व०।
7. वाडवानलः- वडवाया जातः इति वाडवः। वाडवश्चासौ अनलश्च इति कर्मधा० स०। वडवानलः तथा वाडवानलः दोनों शब्द समुद्राग्नि के लिए रूढ़ हैं।

विशेष -

दुष्ट स्वभाव के समर्थन में चन्दन से उत्पन्न अग्नि का उदाहरण दिया गया है। इस प्रकार यहाँ दृष्टान्त अलंकार है। अंतिम वाक्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः।

शब्दार्थ -

च=और। गुरूपदेशः नाम=गुरु का उपदेश। पुरुषाणाम्=मनुष्यों के। अखिल=सम्पूर्ण। मल=दुर्गुण। प्रक्षालन=धोना। क्षमम्=समर्थ। अजलम्=जलरहित।

स्नानम्=स्नान। पलितादि=बालों का सफेद होना आदि। वैरूप्यम्=कुरूपता। अनुपजात=रहित (उत्पन्न न होने वाली।। अजरं=बुढ़ापे से रहित। वृद्धत्वं=(योग्यतापूर्ण) वृद्धत्व। मेदोदोषं=चर्बी (मोटापे) का बढ़ना आदि दोष (के)। अनारोपित=आरोपण (उत्पत्ति) से रहित। गुरुकरणं=गुरुता (महत्त्व) प्रदान करने वाला। असुवर्णविरचनम्=सुवर्ण (आदि धातु) का न बना हुआ। अग्राम्यं=परिष्कृत (उच्च कोटि का) कर्णाभरणम्=कानों का आभूषण। अतीतज्योतिः=ज्योति (चमक) से रहित। आलोकः=प्रकाश। नोद्वेगकरः=उद्विग्नता को उत्पन्न न करने वाला। प्रजागरः=जागृति (जागरण) है।

अनुवाद -

और गुरु का उपेदश तो मनुष्यों के समस्त दुर्गुणों को धोने में समर्थ जलरहित स्नान है, बालों का सफेद होना कुरूपता से रहित और बुढ़ापे रहित (योग्यतापूर्ण) वृद्धत्व, (मोटापा, झुर्रियां आदि) चर्बी का बढ़ना आदि दोषों की उत्पत्ति से रहित (गुरुता) महत्त्व प्रदान करने का साधन है, सोने के बिना बना हुआ परिष्कृत कान का आभूषण है, चमक से रहित प्रकाश है और उद्वेग को न करने वाली जागृति है।

टिप्पणी-

जिस प्रकार जल से कियाजाने वाला स्नान शारीरिक विकारों (गन्दगी) को दूर करने में समर्थ होता है उसी प्रकार गुरु का उपदेश रूपी स्नान मानसिक विकृतियों को दूर करने में समर्थ है।

इसी प्रकार जैसे सामान्य वृद्धत्व बालों के सफेद होने, त्वचा में झुर्रियां एवं अतिरिक्त मोटापे को सूचित करता है उसी प्रकार गुरु का उपेदश रूपी वृद्धत्व व्यक्तित्व की वैचारिक एवं मानसिक परिपक्वता तथा गम्भीरता को द्योतित करता है। इसी प्रकार वैचारिक गम्भीरता एवं प्रौढ़ता का भाव 'अनारोपितमेदोषं गुरुकरणम्' में भी दृष्टिगत होता है।

सामान्य कर्णाभूषण स्वर्णनिर्मित होता है तथापि उत्तम गढ़ाई अथवा सोने में खोट होने से उसमें दोष आ जाता है, परन्तु गुरूपदेश रूपी कर्णाभूषण स्वर्ण निर्मित न होते हुए भी सर्वथा दोषमुक्त एवं परिष्कृत होता है। गुरु के उपदेश को कर्णाभूषण इसलिए कहा गया है क्योंकि कर्णाभूषण भी कान में ही पहना जाता है और गुरु का उपदेश भी सर्वप्रथम कान में ही प्रविष्ट होकर व्यक्ति को मौलिक एवं नैतिक शोभा प्रदान करता है।

इसी प्रकार गुरु के उपदेश को ऐसा प्रकाश कहा गया है जिसे शरीर के सामान्य अंग नेत्रों से ग्रहण नहीं किया जा सकता उसे तो बुद्धि से ही ग्रहण किया जा सकता है। दूसरे अर्थों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है जिस प्रकार सूर्य आदि से उत्पन्न प्रकाश अतितीव्र होने पर आँखों को चौंधिया देने के कारण कष्टकारक भी होता है जबकि गुरूपदेश रूपी प्रकाश सर्वथा सुखद एवं हितकारी ही होता है।

रात का जागरण शरीर एवं मस्तिष्क को थका देता है परन्तु गुरु का उपदेश ऐसी जागृति है जो व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सावधानी एवं सतर्कता प्रदान करती है फिर भी उससे किसी प्रकार की बेचैनी नहीं होती है।

इस प्रकार गुरु के उपदेश की अलौकिकता को दर्शाया गया है अर्थात् वह कोई सामान्य अथवा लौकिक वस्तु नहीं है, वह तो सर्वथा विशिष्ट एवं अद्भुत है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰टीका)

अथ प्रकारान्तरेण गुरुवचनमाहात्म्यं वर्णयन्नाहगुर्विति। नामेति कोमलामन्त्रणे। गुरूणां हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टृणामुपदेशः शिक्षा अजलं जलव्यतिरेकेणापि स्नानमाप्लवः कीदृशम्। अखिलः समग्रोयो मलः कालुष्यं तस्य प्रक्षालनं शुचीकरणं तत्र क्षमं समर्थम्। अन्विति। अनुपजातमनुत्पन्नं पलितं पाण्डुरः कचस्तदादि वैरूप्यं यस्मिन्नेतादृशम्। अजरमिति। नारोपितः स्वीकृतो मेदोदोषो येनैवंभूतं गुरूकरणं स्थूलीभवनम् मेदोदोषेण स्थूलता भवतीति सर्वत्र प्रसिद्धम्। तथायं न भवतीत्यर्थः। असुवेति। न विद्यते सुवर्णस्य कनकस्य विरचनं यस्मिन्नेवंभूतमग्राम्यं प्रशंसनीयं कर्णाभरणम् श्रवणविभूषणम्। अतीतेति। अतीतो गतो ज्योतिः प्रकाशो यस्मादेवंभूत आलोक उद्योतः। न सन्तापजनकः प्रजागरो जागरणम्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्-अखिलाश्च ते मलाश्च इति (कर्मधा॰स॰) तेषां प्रक्षालनम् इति ष॰तत्पु॰। अखिलमलप्रक्षालने क्षममिति स॰तत्पु॰। स्नानं का विशेषण।
2. अजलम्-जलं बिना द्वि॰तत्पु॰।
3. अनुपजातपलितादिवैरूप्यं-विगतं रूपं यस्मात् तत् विरूपम् इति बहु॰। विरूपस्य भाव इति वैरूप्यम् (भावतद्धित) विरूप+ष्यञ् वैरूप्यम्। न

उपजातम् इति अनुपजातम् इति नञ् तत्पु०। अनुपजातं पलितादिवैरूप्यं यस्मिन् तत् इति बहु०। वृद्धत्वं पद का विशेषण।

4. अजरम्-जरसं बिना इति द्वि०तत्पु०।

5. अनारोपितमेदोदोषम्-मेदसो दोषः इति ष०तत्पु०। न आरोपितः (नञ् तत्पु०) अनारोपितः मेदोदोषः येन तद् अनारोपितमेदोदोषम् (बहु०)। गुरूकरणं का विशेषण।

6. गुरूकरणम्- न गुरुः अगुरुः, अगुरुं गुरुं करोति, गुरु+ऊङ् √कृ+ल्युट्।

7. असुवर्णविरचनम्-सुवर्णेन विरचनम् इति तृ०तत्पु०। न सुवर्णविरचनमिति नञ् तत्पु०। कर्णाभरणं का विशेषण।

8. अतीतज्योतिः- अतीतं ज्योतिः यस्मात् असौ इति बहु०। अलोकः पद का विशेषण।

9. उद्वेगकरः- उद्वेगं करोति इति।

10. प्रजागरः- प्र+कृष्टः+जागरः (प्र √जागृ+अप्)।

विशेष - अधिकाररूढवैशिष्टयरूपक अलंकार है।

विशेषेण तु राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्।

शब्दार्थ -

राज्ञाम्=राजाओं का। तु=तो। विशेषण=विशेष रूप से। हि=क्योंकि। तेषाम्=उनके। उपदेष्टारः=उपदेशक (उपदेश देने वाले)। विरला=अल्प (बहुत कम)। जनो=मनुष्य। भयात्=भय से। राजवचनम्=राजा की बात (का)। प्रतिशब्दक=प्रतिध्वनि। इव=के समान। अनुगच्छति=अनुसरण करता है।

अनुवाद -

राजाओं का तो विशेष रूप से। क्योंकि उनके उपदेशक बहुत कम (कुछ विशिष्ट ही) होते हैं। व्यक्ति भय के कारण राजा के आदेश का प्रतिध्वनि के समान अनुसरण करता है।

टिप्पणी -

कहने का तात्पर्य यह है कि गुरु का उपदेश तो सामान्य मनुष्य के लिए ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, फिर राजाओं के लिए तो और भी विशिष्ट रूप से है। राजा जो सम्पूर्ण प्रजा का पालक है उसके तो उपदेशक बनने का साहस विशिष्ट

ज्ञान एवं अनुभव से संपन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। राजा के आदेश का उल्लंघन करने का साहस सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाते चाहे वह अनुचित अथवा अनर्थकारक ही क्यों न हो। इसलिए राजा के लिए दिया जाने वाला गुरु का उपदेश तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृत-टीका-

केवलं तवैव नायमुपदेश इत्यत आह-विशेषेणेति। राज्ञां भूभुजामयमुपदेशो विशेषेणाधिक्येन प्रदातव्य इति भावः। राज्ञामनेक उपदेष्टारः किं तवोपदेशेनेत्यत आह विरलेति। हि निश्चितम तेषां राज्ञामुपदेष्टार उपदेशदातारो विरलाः स्तोकाः। यतो राज्ञामुपदेशसमर्थोऽत्युत्कृष्टो विवक्षितोऽस्मदादि, न त्वन्यो जनः। तदेव प्रदर्शयन्नाह-प्रतिशब्दक इवेति। जनो लोको भयाद्भीते राजवचनं नृपवचनानुगो भवति। न तु प्रत्युत्तरं दातुं समर्थ इति भावः। क इव। प्रतिशब्दक इव प्रतिध्वनिरिव। यथा सोऽपि मूलशब्दसाम्ये नानुगच्छति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उपदेष्टारः-उप √दिश्+तृच्। प्र॰वि॰ - ब॰व॰।
2. प्रतिशब्दकः- शब्दं पश्चात् प्रतिशब्दम् (अव्य॰स॰) प्रतिशब्दं करोति प्रतिशब्दकः (प्रतिशब्दक+अक्)
3. राजवचनम्-राज्ञः वचनम् इति ष॰तत्पु॰।
4. अनुगच्छति- अनु √गम् लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
5. भयात् - हेतौ पञ्चमी।

विशेष - 'प्रतिशब्दक इव--- भयात्' में पूर्णोपमा है।

उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून्।

शब्दार्थ -

उद्दाम=उत्कट। दर्प=अहंकार। श्वयथु=सूजन। स्थगित=अवरुद्ध। श्रवणविवराः=कर्णछिद्र। च=और। ते=वे (राजा)। उपदिश्यमानम्=उपदेश दिये जाते हुए। अपि=भी। न=नहीं। शृण्वन्ति=सुनते हैं। च=और। शृण्वन्तो=सुनते हुए। अपि=भी। गजनिमीलितेन= गजनिमीलिका से (हाथी की तरह बंद आँखों से)। हितोपदेशदायिनो=हितकारी उपदेश देने वाले। गुरून्=गुरुओं को। अवधीरयन्तः=तिरस्कृत करते हुए। खेदयन्ति=खिन्न करते हैं (दुःख पहुँचाते हैं)।

अनुवाद -

और उत्कट अंहकार रूपी सूजन से अवरुद्ध हुए कर्णछिद्रों वाले वे (राजा) उपदेश दिये जाते हुए भी नहीं सुनते हैं और सुनते हुए भी हाथी की तरह बंद आँखों से कल्याणकारी उपदेश देने वाले गुरुओं का अपमान करते हुए उन्हें दुःख पहुँचाते हैं।

टिप्पणी -

भाव यह है कि कुछ घमण्डी राजा ऐसे भी होते हैं कि जो गुरुओं द्वारा दिये जाते हुए उपदेश की ओर ध्यान नहीं देते। जिस प्रकार कान में सूजन होने से कर्णकुहर बंद हो जाते हैं और कुछ सुनायी नहीं देता उसी प्रकार मानो सूजन के कारण कर्णछिद्र बंद हो जाने से गुरु का उपेदश उन्हें सुनाई ही नहीं देता और यदि सुनायी भी दे जाय तो वे उसी प्रकार उस ओर ध्यान नहीं देते जिस प्रकार उन्मत्त हाथी अपनी आँखें बंद करके महावत के आदेशों का पालन नहीं करता।

संस्कृत-टीका -

केषाञ्चिदुपदेशश्रवणमेव नास्तीत्यत आह उद्दामेति। उद्दाम उत्कटो दर्पोऽहङ्कारो येषांते च। पृथु यथा स्यात्तथा स्थगितान्याच्छादितानि श्रवणविवराणि कर्णच्छिद्राणि येषां ते च। द्वौ चकारावेककालं सूचयतः। एवंविधा राजान उपदिश्यमानमपि कथ्यमानमपि हितोपदेशमिति न शृण्वन्ति नाकर्णयन्ति। कदाचिच्छृण्वन्तोऽप्याकर्णयन्तोऽपि गजो हस्ती तस्य यन्निमीलितं नेत्रसङ्कोचस्तद्वन्निमीलितेनावधीरयन्तोऽनादरं कुर्वन्तः। हितोपदेशदायिनः शिक्षाकथकान्गुरून्खेदयन्ति। दुःखं प्रापयन्तीत्यर्थः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उद्दामश्चासौ दर्पः उद्दामदर्पः (क०धा०) उद्दामदर्प एव श्वयथुः उद्दामदर्पश्वयथुः (क०धा०) तेन स्थगिते श्रवणविवरे येषां ते (बहु०) श्वयथु-श्वि+अयुच्।
2. उपदिश्यमानम् - उप+ √दिश्+कर्मणि यक्+शानच्। द्वि०वि०ए०व०।
3. शृण्वन्तः- √श्रु+शतृ प्र०वि०ब०व०।
4. गजनिमीलितेन-गजस्य निमीलितम् इति गजनिमीलितम् इति ष०तत्पु०। गजनिमीलितमिव निमीलितं गजनिमीलितं तेन (कर्मधा०स०)।
5. अवधीरयन्तः- अव उप० √धृ अवस्थाने णिच्+शतृ। प्र०वि०ब०व०।
6. खेदयन्ति- √खिद् परिघाते णिच् लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
7. हितोपदेशदायिनः- हिताय उपदेश इति च०तत्पु०। हितोपदेशं ददतीति हितोपदेशदायिनः (√दा+णिनि द्वि०वि०ब०व०) गुरून् पद का विशेषण।

विशेष - 'दर्पश्वयथु' में रूपक और 'गजनिमीलितेन' में लुप्तोपमा अलंकार है।

अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः। अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि। राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।

शब्दार्थ -

अहंकारदाहज्वर=अहंकाररूपी प्रचण्ड (जलाने में सक्षम) ताप (से उत्पन्न)। मूर्च्छा=बेहोशी (अचेतावस्था) (से)। अन्धकारिता=अन्धकारयुक्त (अज्ञानयुक्त)। राजप्रकृतिः=राजा का स्वभाव। हि=निश्चित रूप से। विह्वला=उद्विग्न (रहता है)। धनानि=धन। अलीक=झूठे। अभिमान=अहंकार। उन्माद=उन्मत्तता (उद्दण्डता) को कारीणि=(उत्पन्न) करने वाले। राजलक्ष्मीः=राज्यलक्ष्मी। राज्यविषविकार=राज्य रूपी ज़हर के विकार (दुष्प्रभाव)। तन्द्राप्रदा=निष्क्रियता (आलस्य) को देने वाली।

अनुवाद -

अभिमान रूपी दाहक ज्वर से उत्पन्न बेहोशी से अन्धकारयुक्त (अज्ञानयुक्त) राजस्वभाव निश्चय ही उद्विग्न रहता है। धन झूठे अभिमान और उन्मत्तता को (उत्पन्न) करने वाले होते हैं। राज्यलक्ष्मी राज्यरूपी विष के विकार से उत्पन्न निष्क्रियमाणता को देने वाली होती है।

टिप्पणी -

जिस प्रकार बहुत तेज़ बुखार मनुष्य के शरीर को जला देने में समर्थ होता है, उससे उत्पन्न बेहोशी से व्यक्ति की आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है और ठीक से कुछ भी देख न पाने से तथा शारीरिक कष्ट से वह व्याकुल रहता है। उसी प्रकार राजा का स्वभाव अभिमान रूपी दाहक ज्वर से उत्पन्न बेहोशी (बुद्धि का ठीक प्रकार से कार्य न करना) से अन्धकारयुक्त अर्थात् उचित-अनुचित का ज्ञान न होने से व्याकुल रहता है। भाव यह है कि धन और राज्यलक्ष्मी का तो स्वभाव है कि वह व्यक्ति में अहंकार और उन्मत्तता को उत्पन्न कर देती है तथा अकर्मण्य बना देती है।

संस्कृत-टीका -

अथ नृपस्वभावं प्रदर्शयन्नाह-राजेति। हि निश्चितम्। एतादृशी राजप्रकृति राज्ञां विह्वला व्याकुला। अहमिति। अहङ्कार एव दाहज्वरस्तीव्रतापस्तद्धेतुका या मूर्च्छा मोहस्तयान्धकारितान्धकार इवाचरिता। धनराज्यलक्ष्म्याः स्वरूपं प्रदर्शयन्नाह-अलीकेति। अलीकोऽवास्तवो योऽभिमानोऽहङ्कार उन्मादश्च तावुभौ कुर्वन्तीति तान्येवंविधानि धनानि द्रव्याणि। राज्यमिति। राज्यमेव

विषं गरलं तस्माद्यो विकारो विकृतिस्तेन कृत्वा तन्द्रालस्यं तत्प्रदा राजलक्ष्मी राज्यश्रीः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता-अन्धकार इव आचरिता इति अन्धकारिता (कर्मधा॰)। अहङ्कार एव दाह-ज्वरः अहङ्कारदाहज्वरः (क॰धा॰)। तेन मूर्च्छा अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छा (तृ॰तत्पु॰)। तया अन्धकारिता (तृ॰तत्पु॰)
2. राजप्रकृतिः- राज्ञः प्रकृतिः (ष॰तत्पु॰)
3. अलीकाभिमानोन्मादकारीणि- अभिमानञ्च उन्मादश्च इति अभिमानोन्मादौ (द्व॰तत्पु॰)। अलीकौ अभिमानोन्मादौ कर्तुं शीलमेषां तानि। धनानि पद का विशेषण।
4. राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा-राज्यमेव विषं इति राज्यविषं (कर्मधा॰) तस्मात् यो विकारः राज्यविषविकारः (पं॰ तत्पु॰)। विकारेण या तन्द्रा राज्यविषविकारतन्द्रा (तृ॰तत्पु॰)। तां ददाति इति द्वि॰तत्पु॰। राजलक्ष्मीः पद का विशेषण।
5. राजलक्ष्मीः- राज्ञः लक्ष्मीः (ष॰तत्पु॰)।

विशेष - 'अहङ्कारदाह---' में रूपक अलंकार है।

आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात्- पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम् इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता।

शब्दार्थ -

तावत्=तो। कल्याण=मंगल (शुभ)। अभिनिवेशी=इच्छुक। प्रथमम्=पहले। लक्ष्मीम्=लक्ष्मी को। एव=ही। आलोकयतु=देखें। सुभट=वीर योद्धाओं (के)। खड्ग=तलवार। मण्डल=समूह (रूपी) उत्पल=कमल। वन=वन (उपवन)। विभ्रम=घूमती हुयी या विहार करने वाली। भ्रमरी=भ्रमरी (रूपा), (मधुकरी)। इयं=यह। लक्ष्मीः=लक्ष्मी। सहवास=साथ रहने (के)। परिचय=सम्बंध विशेष। वशात्=कारण से। विरह=वियोग (कालीन)। विनोद=मनोरंजन (के)। चिह्नानि=चिन्हों (के रूप में)। पारिजात=मन्दार (कल्पवृक्ष)। पल्लवेभ्यो=किसलयों से (नये पत्तों से)। रागं=आसक्ति (प्रेम अथवा लालिमा)। इन्दु=चन्द्रमा (के)। शकलात्=खण्ड

से (कला से)। एकान्त=अत्यधिक। वक्रताम्=कुटिलता को। उच्चैःश्रवसः=उच्चैश्रवा से (इन्द्र के घोड़े से)। चञ्चलताम्=चपलता को। कालकूटात्=कालकूट (नामक विष) से। मोहनशक्तिम्= मूर्च्छा उत्पन्न करने का सामर्थ्य। मदिरायाः=मदिरा से। मदम्=उन्माद। कौस्तुभमणेः=(विष्णु के कण्ठ रत्न) कौस्तुभ मणि से। अतिनैष्ठुर्यम्=नितान्त (अत्यधिक) कठोरता को। इति=इस प्रकार (आदि)। एतानि=इन (को)। गृहीत्वा=लेकर। इव=मानो। क्षीरसागरात्=क्षीर-सागर से (दुग्धसमुद्र से)। उद्‌गता=उत्पन्न हुयी।

अनुवाद -

तो मंगल के अभिलाषी (आप) पहले लक्ष्मी को ही देखें। वीरयोद्धाओं के तलवार-समूह रूपी कमल-वन में घूमने वाली मधुकरी यह लक्ष्मी, साथ रहने से बने हुए सम्बन्ध विशेष के कारण वियोग (काल) के मनोरंजन के चिह्न रूप में कल्पवृक्ष के किसलयों से आसक्ति अथवा आरुण्य को, चन्द्रमा के खण्ड से अत्यधिक कुटिलता (टेढ़ेपन) को, उच्चैःश्रवा घोड़े से चपलता को, कालकूट विष से सम्मोहन शक्ति को, मदिरा से उंन्माद को, और कौस्तुभ मणि से अत्यधिक कठोरता आदि को लेकर मानो क्षीरसागर से बाहर निकली है।

टिप्पणी -

प्रस्तुत अनुच्छेद में समुद्र-मन्थन की पौराणिक कथा की ओर संकेत किया गया है। इसके अनुसार लक्ष्मी, पारिजात वृक्ष, चन्द्रमा, उच्चैःश्रवा, कालकूट, मदिरा और कौस्तुभमणि- ये समुद्र मन्थन पर क्षीरसागर से निकले थे। अतः मानो क्षीरसागर में पारिजात आदि के साथ रहने पर उसका उनसे विशेष संबंध हो गया और फिर उनसे वियोग होने पर भी उसका मन लगा रहे इसलिए मनोविनोद के चिह्न (अथवा उनके स्मृति चिन्हों के रूप में) उसने उनके वे धर्म ग्रहण कर लिए। पारिजात के नवकिसलयों में जो लालिमा होती है वह अस्थिर होती है पत्तों के विकास के साथ वह कम होती जाती है उसी प्रकार लक्ष्मी का किसी के प्रति प्रेम स्थिर नहीं होता। जिस प्रकार चन्द्रमा के खण्ड में वक्रता (टेढ़ापन) रहती है उसी प्रकार यह भी सरलहृदया नहीं है स्वभाव से कुटिल है। उच्चैःश्रवा के समान चञ्चल है कहीं भी अधिक देर तक टिक नहीं सकती। कालकूट विष की मूर्छित करने की क्षमता भी इसमें है अर्थात् मनुष्य की बुद्धि को ऐसा सम्मोहित कर देती है कि वह इसके दुर्गुणों को जानते हुए भी इसके आकर्षण में बंधता चला जाता है। मदिरा के समान व्यक्ति को मतवाला बना देती है। जिस प्रकार शराब के नशे से मनुष्य की बुद्धि ठीक प्रकार काम नहीं करती उसी

प्रकार लक्ष्मी का नशा भी मनुष्य को दिग्भ्रमित कर देता है। कौस्तुभमणि की कठोरता भी लक्ष्मी के स्वभाव में है यह जिसके साथ बहुत दिनों रहकर धनवान बनाती है उसके प्रति पल भर में ही कठोर बनकर उसे छोड़ भी देती है। समुद्र मन्थन से निकले हुए चौदह रत्न क्रमशः इस प्रकार हैं- कालकूट, कामधेनु, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, पारिजात, कौस्तुभमणि, अप्सराएं, पाञ्चजन्यशङ्ख, शार्ङ्गधनुष, चन्द्रमा, लक्ष्मी, वारुणी, धन्वन्तरि तथा अमृत।

क्षीरसागर- दूध की राशि से बना हुआ समुद्र क्षीरसागर कहलाता है। विष्णु इसी क्षीरसागर में शेष-शय्या पर विश्राम करते हैं। कालकूट-समुद्र-मन्थन से निकला हुआ विष, जिसका शिव ने पान किया था। इस विष के पान से उनके गले का रंग नीला हो गया था, अतः वह 'नीलकण्ठ' कहलाने लगे।

उच्चैःश्रवस्- समुद्र-मन्थन के समय निकला हुआ सफेद रंग का घोड़ा जिसे इन्द्र को भेंट किया गया था। कौस्तुभमणि-चौदह रत्नों में से एक जिसे विष्णु ने ग्रहण किया था। पारिजात- यह कल्पवृक्ष है जो समुद्र-मन्थन के समय अन्य रत्नों के साथ निकला था, जिसे इन्द्र के नन्दन वन में लगाया गया था।

संस्कृत-टीका (सि०च०भा०च० टीका)-

नेदं पूर्वोक्तमतथ्यं किन्तु सत्यमेवेत्याह-आलोकयत्विति- कल्याणे मङ्गलेऽभिनिवेश आग्रहो यस्यैवंभूतस्त्वं तावदादौ लक्ष्मीमेव प्रथममालोकयतु विचारयतु। लक्ष्मी-दोषानाह- इयमिति हि निश्चितम्। इयं प्रत्यक्षोपलभ्यमाना खड्गानां कौक्षेयकाणां यन्मण्डलं सङ्घातस्तदेव कृष्णत्वसाम्यादुत्पलवनं तत्र विश्रमोऽवस्थितिस्तस्मिंश्चञ्चलत्वसाम्याद्भ्रमरी मधुकरी लक्ष्मीः। पुनर्दोषान्तरं प्रदर्शयन्नाह-क्षीरेति। यदा कश्चिद्दूरदेशान्तरं गन्तुमीहते तदासौ च सहवासिस्मृतिहेतोस्तदीयं किञ्चिद्वस्त्वादायैव गच्छति, तथेयमपि सहवासजनितो यः परिचयः सम्बन्धविशेषस्तद्वशात्सहवासिपारिजातादीनामित्येतानि वस्तूनि गृहीत्वैवादायैव क्षीरसागराद्दुग्धाम्बुधेरुद्गता प्रादुर्भूता। कीदृशानि। विरहः सहवासिभिरसम्बन्धस्तस्मिन्विनोदचिह्नानि चित्तालम्बनलक्षणानि। एतानि कानीत्यपेक्षायामाह-पारीति। पारिजातपल्लवेभ्यो मन्दारकिसलयेभ्यो रागं विषयलिप्सामारुण्यं च। इन्दुशकलाच्चन्द्रलेखादेकान्तवक्रतां कुटिलतां प्रातिकूल्यं च। उच्चैःश्रवस इन्द्राश्वाच्चञ्चलतां चित्तास्थैर्यं चाञ्चल्यं च। कालकूटात्कालकूटनाम्नो विषान्मोहनशक्तिं च। मदिरायाः कादम्बर्याः मदमुन्मादत्वमुन्मोह सम्भेदलक्षणं च। कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यं काठिन्यं निर्दयत्वं चेति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. आलोकयतु-आ √लोक् दर्शने लोट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
2. कल्याणाभिनिवेशी- कल्याणे अभिनिवेष्टुं शीलं यस्य सः इति बहु॰। अभि+ नि+ √विश् णिनि प्र॰वि॰ए॰व॰।
3. सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी- शोभनाश्च ते भटाः सुभटाः (क॰धा॰) खड्गानां मण्डलं खड्गमण्डलं (ष॰तत्पु॰)। सुभटानां खड्गमण्डलं सुभटखड्गमण्डलम् (ष॰तत्पु॰), उत्पलानां वनं उत्पलवनम् (ष॰तत्पु॰) सुभटखड्गमण्डलम् एव उत्पलवनम् सुभखड्गमण्डलोत्पलवनम् (क॰धा॰) तस्मिन् वने विभ्रमः यस्याः सा भ्रमरी इति बहु॰।
4. इन्दुशकलात्-इन्दोः शकलम् इन्दुशकलम् (ष॰तत्पु॰) तस्मात्।
5. सहवासपरिचयवशात्- सह वसनं इति सहवासः (सह √वस्+घञ्)। सहवासेन परिचयः इति तृ॰तत्पु॰। तस्य वशात् इति ष॰तत्पु॰।
6. विरहविनोदचिह्नानि-विनोदाय चिह्नानि इति च॰तत्पु॰। विनोदस्य चिह्नानि इति ष॰तत्पु॰। विरहे विनोदचिह्नानि इति स॰तत्पु॰।
7. गृहीत्वा √ग्रह् उपादाने+क्त्वा।
8. उद्गता- उद्+ √गम्+क्त+टाप् प्र॰वि॰ए॰व॰।

विशेष -

'सुभट... उद्गता' में रूपक, अतिश्योक्ति तथा क्रियोत्प्रेक्षा के परस्पर अङ्ग और अङ्गी भाव के कारण सङ्कर अलंकार है।

न ह्येवंविधमपरमपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति, यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति।

शब्दार्थ -

इह जगति=इस संसार में। किञ्चित्=कुछ (कोई)। अपरम्=दूसरा। एवंविधम्=ऐसा (इस प्रकार का)। अपरिचितम्=(अपरिचित) परिचयशून्य (परिचय के संबंध की उपेक्षा करने वाला)। नहि=नहीं। अस्ति=है। यथा=जैसी। इयम्=यह। अनार्या=दुष्टा। खलु=निश्चित रूप से। लब्धापि=(कष्टों से) प्राप्त की गयी भी। दुःखेन=दुःखपूर्वक। परिपाल्यते=पालन की जाती है (रखी जाती है)। दृढ=स्थिर। गुणपाश=(शौर्य आदि) गुण रूपी रस्सी (के)। सन्दान=बन्धन (से)। निष्पन्दीकृता=निश्चल की गयी। अपि=भी। नश्यति=समाप्त हो जाती है।

अनुवाद -

इस संसार में इतने अपरिचित स्वभाव वाली अन्य कोई (वस्तु) नहीं है जितनी कि यह दुष्टा लक्ष्मी है। प्राप्त कर लिये जाने पर भी निश्चय ही दुःख से रक्षित की जाती है। दृढ़ गुणरूपी (रस्सी) पाश के बन्धन से निश्चल किये जाने पर भी नष्ट हो जाती है (चली जाती है)।

टिप्पणी -

प्रस्तुत अनुच्छेद में लक्ष्मी के स्वभाव की कठोरता को दर्शाया गया है। परिचय स्वाभाविक रूप से घनिष्ठता को बढ़ाने वाला होता है, परन्तु यह अश्रेष्ठा लक्ष्मी बड़ी निर्मोही है, घनिष्ठतम परिचय के उपरान्त भी अपरिचित ही बनी रहती है अर्थात् किसी भी समय साथ छोड़कर इस प्रकार चली जा सकती है जैसे कभी उस व्यक्ति के पास रही ही न हो। यदि किसी को कष्ठ-साध्य यत्नों से प्राप्त भी हो जाये तो उसे संभालना अत्यन्त कठिन है। गुणों के पाश से तात्पर्य यह है कि सन्धि, विग्रह आदि राजनीति के छः गुणों एवं अंगों का यदि बहुत संतुलित रूप में प्रयोग किया जाये (इस आशय से कि लक्ष्मी स्थिर रूप से रहे) तब भी यह नष्ट हो जाती है।

संस्कृत-टीका-

अथ लक्ष्म्यास्तत्सहितस्यापि राज्ञो निन्दां कुर्वन्नाह-नहीति। इह जगत्येवम्विधमेतादृशमपरिचितं निर्दाक्षिण्यं किञ्चिन्नास्ति यथेयमनार्थाऽश्रेष्ठा वर्तते। एतदेव प्रपञ्चयन्नाहलब्धेति। लब्धापि महता कष्टेन प्राप्तापि दुःखेन खलु परिपालनविषयीक्रियते। दृढं गाढं गुणाः शौर्यादयस्तल्लक्षणं यत्सन्दानं बन्धनं तेन निस्पन्दीकृतापि निश्चलीकृतापि नश्यति प्रपलायते।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अनार्या-न आर्या इति नञ् तत्पु०।
2. लब्धा- √लभ्+क्त+टाप् प्र०वि०ए०व०।
3. परिपाल्यते- परि+ √पाल् रक्षणे+कर्मणि यक् लट् प्र०पु०ए०व०।
4. दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृता- दृढाः गुणाः एव पाशाः इति दृढगुणपाशाः क०धा०। दृढगुणपाशानां सन्दानमिति ष०तत्पु०। दृढगुणपाशसन्दानेन निष्पन्दीकृता इति तृ०तत्पु०। नि+स्पन्द+च्वि+ √कृ+क्त+टाप् प्र०वि०ए०व०।

विशेष - लक्ष्मी में अनार्यात्व के आरोप से रूपक अलंकार है।

उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृताप्यपक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालितापि प्रपलायते।

शब्दार्थ -

उद्दाम=उत्कट। दर्प=अहंकार। भट=योद्धा। सहस्रं=हजारों। उल्लासित=ऊर्ध्वीकृत (ऊपर उठायी हुयी)। असिलता=तलवारों की पंक्ति। पञ्जर=पिंजरा। विधृता=स्थापित की गयी (रखी गयी)। अपि=भी। अपक्रामति=चली जाती है। मदजल=(हाथियों के) गण्डस्थल से टपकने वाला मदजल। दुर्दिन=घटा और वर्षा वाला दिन। अन्धकार=अंधेरा। गज=हाथी। घटित=निष्पादित। घन=घने। घटा=बादल। पारिपालिता=रक्षा की जाती हुयी। अपि=भी। प्रपलायते=पलायन कर जाती है (भाग जाती है)।

अनुवाद -

उत्कट अहंकार से युक्त हज़ारों योद्धाओं द्वारा उठायी गयी तलवारों की पंक्ति रूपी पिंजरे में (रोककर) रखी भी (लक्ष्मी) भाग जाती है। मदजल रूपी वर्षा के दिन में अन्धकार उत्पन्न करने वाले हाथियों के द्वारा बनाये गये सघन समूह रूपी घने बादलों द्वारा सुरक्षित की जाती हुयी भी चली जाती है।

टिप्पणी -

अत्यन्त बलशाली पशु को भी पिंजरे में बाँध कर रखा जा सकता है, परन्तु जहाँ हजारों वीर योद्धा इस (राज्य) लक्ष्मी की रक्षा के लिए प्रतिक्षण अपनी तलवारों को उठाये हुए तत्पर रहते हों ऐसे हजारों तलवारों रूपी सींखचों से बने हुए पिंजरे में से भी निकलकर यह चली जाती है। जिस प्रकार बहुत अधिक बादल और वर्षा वाले अन्धकारयुक्त दुर्दिन में कोई कहीं जा नहीं पाता है वैसे मदजल की अधिकता से मानो वर्षा वाले और संख्या में बहुत अधिक हाथियों रूपी घने बादलों वाले अतएव अंधकारयुक्त दुर्दिन में भी यह निकलकर चली जाती है। तात्पर्य यह है कि यदि किसी राजा की सेना इतनी बलशाली हो कि उसमें इतनी संख्या में उन्मत्त हाथी हों कि उनकी कनपटी से टपकने वाला मदजल वर्षा की भांति प्रतीत होता हो और संख्या में अधिक होने के कारण ऐसा लगता हो जैसे घने बादल हों। इतनी शक्तिशाली सेना के द्वारा रक्षा की जाती हुयी भी लक्ष्मी चली जाती है।

संस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका) -

उद्दामेति। उद्दाम उत्कटो दर्पोऽहङ्कारो येषामेवंभूता ये भटा योद्धारस्तेषां सहस्रं तेन उल्लासिता ऊर्ध्वीकृता या असिलतास्ता एव पञ्जरं

तत्र विधृतापि स्थापिताऽप्यपक्रामत्यपसरति। मदेति। मदजलं दानवारि तदेव श्यामत्वसाधर्म्याद्दुर्दिनान्धकारस्तद्युक्ता ये गजा हस्तिनस्तैर्घटिता निष्पादिता या घटा निविडा घटा समूहस्तया परिपालितापि रक्षितापि प्रपलायते पलायनं करोति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता- उद्दामः दर्पः येषां ते उद्दामदर्पाः (बहु०)। उद्दामदर्पाश्च ते भटाः उद्दामदर्पभटाः (क०धा०) उद्दामदर्पभटानां सहस्रम् इति ष०तत्पु०। उद्दामदर्पभट सहस्रैः उल्लासिता (तृ०तत्पु०)। असिलता एव पञ्जरम् (क०धा०)। उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरे विधृता इति स०तत्पु०।
2. अपक्रामति- अप √क्रम् पादविक्षेपे लट् प्र०पु०ए०व०।
3. मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालिता- मद एव जलम् इति कर्म०। मदजलेन दुर्दिनम् इति तृ०तत्पु०। मदजलदुर्दिनस्य अन्धकाराः इति ष०तत्पु०। मदजलदुर्दिनान्धकाराः एव गजाः इति कर्म०। घनानां घटाः घन-घटाः ष०तत्पु०। गजैः घटिताः घनघटाः (तृ०तत्पु०) इति मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटाः। तस्यां परिपालिता इति स०तत्पु०। परि+√पाल्+क्त+टाप् प्र०वि०ए०व०।
4. प्रपलायते- प्र+परा+ √अय् गतौ लट् प्र०पु०ए०व०।

विशेष - यहाँ 'परम्परितरूपक एवं विभावनाविशेषोक्तिमूलक सन्देहसङ्कर अलंकार है।

न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।

शब्दार्थ -

न=नहीं। परिचयं=संबंध विशेष। रक्षति=रक्षा करती है। अभिजनं=कुलीनता को। ईक्षते=देखती है। रूपं=सौन्दर्य को। अलोकयते=देखती है। कुलक्रमम्=वंश परिपाटी को। अनुवर्तते=अनुसरण करती है। शीलं=चरित्र को। पश्यति=देखती है। वैदग्ध्यं=चतुराई को। गणयति=सम्मान करती है। श्रुतं=शास्त्र (ज्ञान) को। आकर्णयति=सुनती है। धर्मम्=(धर्म) सत्कर्त्तव्य को। अनुरुध्यते=मानती है।

त्यागम्=त्याग (का)। आद्रियते=सम्मान करती है। विशेषज्ञतां=विशिष्ट ज्ञान (का)। विचारयति=विचार करती है। आचारं=सदाचार (को) (सज्जन पुरुषों द्वारा अनुकरणीय मार्ग)। पालयति=अनुसरण करती है। सत्यम्=सत्य (ऋत अथवा शाश्वत)। अवबुध्यते=जानती है। लक्षणं=(भाग्य के शुभ) लक्षण को। प्रमाणीकरोति=प्रमाण मानती है। गन्धर्वनगरलेखा=गन्धर्वनगर की पंक्ति। (ज्योतिषशास्त्र में अशुभ माना जाने वाला दृष्टिभ्रम के कारण आकाश में दिखायी देने वाला नगर)। इव=के समान। पश्यत=देखते। एव=ही। नश्यति=नष्ट हो जाती है।

अनुवाद -

न परिचय की रक्षा करती है। न कुलीनता को देखती है। न सौन्दर्य को देखती है। न वंश-परंपरा का अनुसरण करती है। न चरित्र को देखती है। न निपुणता का सम्मान करती है। न शास्त्र को सुनती है। न धर्म को मानती है। न त्याग का आदर करती है। न विशिष्ट ज्ञान के विषय में सोचती है। न सदाचार का पालन करती है। न सत्य को जानती है। न लक्षणों को प्रमाण बनाती है। गन्धर्व नगर की पंक्ति के समान देखते ही अदृश्य हो जाती है।

टिप्पणी -

तात्पर्य यह है कि यह दुष्टा लक्ष्मी स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करने वाली स्वेच्छाचारिणी है। किसी के साथ बहुत समय तक साथ रहने से उत्पन्न हुआ सम्बन्ध भी उसे रोक कर नहीं रख सकता। लंबे समय तक किसी के पास रहकर अचानक भी छोड़कर चली जाती है। आवश्यक नहीं कि उच्च कुल में जन्मे व्यक्ति के पास ही रहे वह अत्यन्त निकृष्ट कुलोत्पन्न मनुष्य के पास भी रहती है। सुन्दर मनुष्य को निर्धन बनाकर कुरूप के पास भी चली जाती है। वंश परम्परा से कई पीढ़ियों तक रहकर भी किसी को छोड़कर चल देती है। दुश्चरित्र के साथ रहने में भी उसे कोई आपत्ति नहीं चाहे वह उसका दुरुपयोग ही क्यों न करे। दक्ष, बुद्धिजीवी और धर्माचरण करने वालों को भी छोड़कर चली जाती है। सौभाग्य के लक्षणों से युक्त लोगों के पास भी नहीं रहती।

गन्धर्वनगरलेखा- गन्धर्वनगर आकाश में दिखायी देने वाला नगर है जो दृष्टिभ्रम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ज्योतिषशास्त्र में इसे अमङ्गलकारी तथा अशुभ माना गया है। भिन्न-भिन्न रूप में दिखायी देने से इसका प्रभाव भी भिन्न-भिन्न प्रकार का माना गया है। जैसे दीप्त रूप में दीखने पर राजा की मृत्यु, बाईं ओर से दीखने पर शत्रुभय तथा दक्षिण से दीखने पर विजय का सूचक होता है। यह पाण्डुर वर्ण का वज्रपात जैसे बाँये को चलने वाला गन्धर्वनगर आकाश

में दिखायी देता है तो रक्तपात का सूचक होता है- (बृहत्संहिता)-

गन्धर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम्।
दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सत्ये॥
अनेकवर्णाकृतिः खे प्रकाशते पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम्।
यदा तदा नागमनुष्यवाजिनां पिबत्यसृग् भूरि रणे वसुन्धरा॥

संस्कृत-टीका -

नेति। परिचयं सन्स्तवं न रक्षति न पालयति नेति अभिजनं कुलं नेक्षते नावलोकयति। नेति। रूपं सौन्दर्यं न आलोकयतेऽवलोकयति। नेति। कुलक्रमं कुलपरिपाटीं नानुगच्छति। नेति। शीलमाचारं न पश्यति नावलोकयति। नेति। वैदग्ध्यं पाण्डित्यं न गणयति न विचारयति। नेति। श्रुतं शास्त्रं नाकर्णयति न शृणोति। नेति। धर्मं वृषं नानुरुध्यते धर्मानुरोधेनैव न प्रवर्तते अधर्मवतामपि गृहे तद्दर्शनात्। नेति। त्यागं दानं प्रति नाद्रियते नादरं करोति कृपणसद्मन्यपि दर्शनात्। विशेषज्ञतां विशेषेण सर्वार्थवेदितां न विचारयति न विचारणां करोति। यत एव विद्वाँसो दरिद्रोपद्रुताः स्युरिति प्रसिद्धिः। नेति। आचारं शिष्टानुचरितं मार्गं न पालयति न रक्षति। लक्ष्मीवतोऽपि प्रायोऽशिष्टाचरणदर्शनात्। नेति। सत्यमवितथं नानुबुध्यते न जानाति। असत्यवतोऽपि गृहे बाहुल्येन दर्शनात्। नेति। लक्षणं मषीतिलकादि सामुद्रिकशास्त्रप्रतिपादितं न प्रमाणीकरोति लक्षणसत्त्वेऽपि तस्या अभावदर्शनात्। गन्धर्वेति। गन्धर्वनगरलेखा हरिश्चन्द्रपुरीति यस्याः प्रसिद्धिः। असद्वस्तुभ्रमो वा। तद्वदेव पश्यत एवावलोकयत एव पुरुषस्य नश्यति विनश्यति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अभिजनम्-अभि √जन्+घञ् पुं०, दि०ए०व०।
2. रक्षति- √रक्ष् लट् प्र०पु०ए०व०।
3. ईक्षते- √ईक्ष् दर्शने लट् प्र०पु०ए०व०।
4. आलोकयते- आ √लोक् लट् प्र०पु०ए०व०।
5. कुलक्रमम् - कुलस्य क्रमः (ष०तत्पु०) तम्।
6. अनुवर्तते-अनु √वृत् लट् प्र०पु०ए०व०।
7. पश्यति- √दृश् लट् प्र०पु०ए०व०।
8. वैदग्ध्यम्- विदग्ध+ष्यञ् (न०)।
9. गणयति- √गण् संख्याने लट् प्र०पु०ए०व०।
10. आकर्णयति- आ √कर्ण् भेदने लट् प्र०पु०ए०व०।

11. अनुरुध्यते- अनु √रुध् कामे लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
12. आद्रियते - आ+ √दृ दारणे कर्मवाच्य लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
13. विचारयति- वि+ √चर् गतौ लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
14. अवबुध्यते- अव √बुध् बोधने कर्मवाच्य लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
15. प्रमाणीकरोति- प्रमाण+ च्वि+ √कृ लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
16. गन्धर्वनगरलेखा- गन्धर्वाणां नगराणि इति ष॰तत्पु॰ तेषां लेखा इति ष॰तत्पु॰।
17. पश्यतः- √दृश्+शतृ ष॰वि॰ए॰व॰।
18. नश्यति- √नश् लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।

विशेष - 'गन्धर्वनगरलेखेव' में 'उपमा' अलंकार है।

अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसञ्चरण- व्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकक्षतेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्।

शब्दार्थ -

अद्य=आज। अपि=भी। इव=मानो। मन्दर=मन्दराचल पर्वत (द्वारा।) परिवर्त=घुमाये जाने (से)। आरूढः=प्राप्त (उठाये हुए)। आवर्त=भँवर (जल का निरन्तर गोलाई में तीव्रता से घूमना)। भ्रान्ति=घूमना (से)। जनित=उत्पन्न। संस्कार=संस्कार (के कारण) परिभ्रमति=घूमती है। कमलिनी=कमलिनियों (में) सञ्चरण=भ्रमण (घूमने) के। व्यतिकर=संसर्ग (से)। इव=मानो। नलिननाल=कमलनालों (में) लग्न=लगे हुए। कण्टक=काँटों से। क्षता=घायल (विदीर्ण पैर वाली)। क्वचित्=कहीं। अपि=भी। निर्भरम्=दृढ़। पदम्=पैर को। न=नहीं। आबध्नाति=रखती है।

अनुवाद -

आज भी (मानो) मन्दराचल द्वारा घुमाये जाने से उठे हुए भंवर से उत्पन्न भ्रान्ति के संस्कार वाली (यह लक्ष्मी) घूमती है। कमलिनियों में घूमने के संसर्ग से मानो कमलनालों में लगे हुए काँटों से क्षत (पैर वाली) हुयी कहीं भी स्थिरता से पैर नहीं रखती।

टिप्पणी -

प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल में देवताओं और असुरों ने अमृत प्राप्ति के लिए समुद्र-मन्थन किया था। अतः मन्दर पर्वत को मथनी तथा शेषनाग की रस्सी बनाकर क्षीरसागर को मथा। परिणामस्वरूप उसमें से चौदह रत्न निकले जिनमें

से लक्ष्मी भी एक थी। क्षीरसागर में विद्यमान भँवर का प्रभाव इतना तीव्र था कि उसके कारण आज भी लक्ष्मी भँवर की भाँति घूमती रहती है, चञ्चला है। कमल के मध्य लक्ष्मी का निवास माना गया है। उसी प्रसंग में यह कल्पना की गयी है कमलवन में घूमते समय कमलनालों के जो काँटे लक्ष्मी के पैरों में लगे मानो उन्हीं विदीर्ण चरणों वाली यह कहीं भी स्थिरतापूर्वक पैर नहीं रखती।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

अद्यापीति। अद्यापि इदानीमप्यारूढः प्राप्तो यो मन्दरेण मेरुणा परिवर्तः परिभ्रमस्तज्जनितो य आवर्तः पयसां भ्रमस्तस्माद्या भ्रान्तिर्भ्रमिस्तज्जनितः संस्कारो वेगाख्यो यस्या एवंविधेव परिभ्रमति परिभ्रमणं करोति। क्वचिदपीति। क्वापि स्थले निर्भरं निश्चलं पदं नावबध्नाति न निदधाति। अतएवोत्प्रेक्षते-लक्ष्म्याः कमलवासस्य प्रसिद्धत्वात्कमलिनीषु सञ्चरणव्यतिकरः सम्बन्धस्तेन लग्ना नलिननालकण्टका यस्याः सैवंविधेव। यथा भग्नकण्टका भूमौ निश्चलपदं न दत्ते तथेयमपीत्यर्थः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. आरूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारा- आरूढः य मन्दरपरिवर्तः इति कर्म॰। मन्दरेण परिवर्तः मन्दरपरिवर्तः (तृ॰तत्पु॰)। मन्दरपरिवर्तेन आवर्तः मन्दरपरिवर्तावर्तः तृ॰तत्पु॰। तस्मात् या भ्रान्तिः इति पं॰तत्पु॰। तया जनितः संस्कारः यस्याः सा इति बहु॰।

2. कमलिनीसञ्चरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकक्षता- कमलिनीषु सञ्चरणम् इति स॰तत्पु॰। तस्य व्यतिकरः (वि+अति+ √कृ+अप्) इति ष॰तत्पु॰। नलिनानां नालानि इति ष॰तत्पु॰। तेषां कण्टकानि इति ष॰तत्पु॰। कमलिनीसञ्चरणव्यतिकरेण लग्नानि नलिननालकण्टकानि इति तृ॰तत्पु॰। तैः क्षता इति तृ॰ तत्पु॰।

3. आबध्नाति- आ+ √बन्ध् बन्धने लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।

विशेष - उत्प्रेक्षा, अनुप्रास और अतिश्योक्ति अलंकार है।

अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति।

शब्दार्थ -

परमेश्वर=बड़े राजाओं के। गृहेषु=घरों में (राजमहलों में) अति=बहुत अधिक। प्रयत्न=प्रयास से। विधृता=रखी गयी (रोकी गयी)। अपि=भी।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अतिप्रयत्नविधृता- अतिशयः प्रत्यत्नः अतिप्रयत्नः इति क॰धा॰। अतिप्रयत्नेन विधृता (तृ॰तत्पु॰) वि+ √धृ धारणे+क्त+टाप् प्र॰वि॰ए॰व॰।
2. परमेश्वरगृहेषु-परमश्चासौ ईश्वरश्च इति क॰धा॰। परमेश्वराणां गृहाणि (ष॰तत्पु॰) तेषु।
3. विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्ता-गन्धाश्च ते गजाश्च गन्धगजाः (क॰धा॰) विविधाः गन्धगजाः विविधगन्धगजाः (क॰धा॰)। विविधगन्धगजानां गण्डाः इति ष॰तत्पु॰। तेषां मधुः (ष॰तत्पु॰)। तस्य पानम् (ष॰तत्पु॰)। विविधगन्धगजगण्डमधुपानेन मत्ता (तृ॰तत्पु॰)।
4. पारुष्यम्-परुषस्य भावः इति। परुष+ष्यञ्।
5. उपशिक्षितुम्-उप+ √शिक्ष् विद्योपादाने+तुमुन्।
6. असिधारासु-असीनां धाराः इति ष॰तत्पु॰। तासु।

विशेष - 'मधुपानमत्तेव' में उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति और 'उपशिक्षितुमिव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्।

शब्दार्थ -

इव=मानो। विश्वरूपत्वम्=अनेकरूपता को। ग्रहीतुम्=धारण करने के लिए। नारायण=विष्णु (के)। मूर्तिम्=शरीर (का)। आश्रिता=आश्रय लिया है।

अनुवाद -

मानो विश्वरूपत्व (भगवान विष्णु की अनेक प्रकार के भ्रामक रूपों को धारण करने की शक्ति) को धारण करने के लिए (भगवान) विष्णु के शरीर का आश्रय लिया है।

संस्कृत-टीका - (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)-

विश्वं प्रविष्टं तस्मिन्रूपे तत्। अथवा विश्वेन रूप्यते यद्रूपं तद्विश्वरूपं तस्य भावस्तत्त्वं तदिव ग्रहीतुं नारायणमूर्ति जनार्दनशरीरमाश्रिता याधिगता।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. विश्वरूपत्वम्-विश्वस्य रूपाणि यस्मिन् तद् विश्वरूपं (बहु॰) तस्य भावः विश्वरूपत्वम्।
2. ग्रहीतुम् - √ग्रह्+तुमुन्।

3. आश्रिता - आ √श्रि+क्त+टाप्।
4. नारायणमूर्तिम्- नारायणस्य मूर्तिः (ष०तत्पु०) ताम्।

विशेष - उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचिततमूलदण्ड-कोशमण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्।

शब्दार्थ -

च=और। अप्रत्ययबहुला=अत्यधिक अविश्वसनीया। दिवसान्त=सन्ध्या समय मुरझा जाने वाले। कमलम्=कमल (के)। इव=समान। समुपचित=सम्यक् रूप से वृद्धि को प्राप्त। मूल=मित्रादि सहायक अथवा वंशक्रम से प्राप्त राज्य। कमल पक्ष में=जड़ (कन्द)। दण्ड=सेना, कर आदि। कमल पक्ष में नाल। कोश=धन एवं शस्त्रादि का भण्डार। कमल पक्ष में कमल का मध्य भाग (पराग आदि)। मण्डल=द्वादशसप्तति भेदभिन्ना राजप्रकृति (सामन्त समूह आदि)। कमल पक्ष में परिधि। भूभुजम्=राजा को। अपि=भी। मुञ्चति=छोड़ देती है।

अनुवाद -

और अत्यधिक अविश्वसनीया (यह लक्ष्मी) सम्यक् प्रकार से वृद्धि को प्राप्त सैन्य, कुल, दण्ड शक्ति, कोश और राज्य वाले राजा को भी उसी प्रकार छोड़ देती है जिस प्रकार संध्यासमय जड़, नाल, कली और विस्तार युक्त कमल को छोड़ देती है।

टिप्पणी -

कमल के मध्य लक्ष्मी का निवास प्रसिद्ध है। इसी प्रसंग में कमल और राजा की तुलना की है- दिन की समाप्ति पर अत्यन्त समृद्ध कमल को लक्ष्मी छोड़ कर चली जाती है उसी प्रकार अत्यधिक समृद्ध राजा को भी छोड़कर दूसरे राजा के पास चली जाती है अतः विश्वास करने योग्य नहीं है।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)-

अप्रत्ययेति। अप्रत्ययोऽविश्वासो बहुलो यस्यामेवंभूता सति। दिवसान्ते यथा कमलं स्वाश्रयं मुञ्चति तथा स्वाश्रयीभूतं भूभुजमपि। तत्रोभयोः साम्यमाह-समिति। सम्यक्प्रकारेणोपचितानि वृद्धिं प्राप्तानि। अथ च समुपचितं वर्धमानं मूलं मित्रादिमूलकन्दः, दण्डो नालम्, कोशः कमलाभ्यन्तरम्, मण्डलं परिमाण्डल्यम्, एतानि यस्येति विग्रहः। दण्डः, क्रूरः, कोशो भाण्डागारः, मण्डलं देशो यस्य। 'मण्डलं द्वादशराज्यकम् इत्येकस्य।

'विजिगीषुरुदासीनो मध्यमश्चेति राजकम्'। गुणानां विषयं वृद्धा जगुः प्रकृतिमण्डलम्। पार्ष्णिराक्रन्द आसारः, इत्यपि। 'तदेवं शक्रमित्यादिभेदा द्वादश इष्यते। मण्डलं द्वादशराज्यम्' इत्यन्ये।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अप्रत्ययबहुला- न प्रत्ययः अप्रत्ययः इति नञ् तत्पु०। अप्रत्ययः बहुलः यस्यां सा इति बहु०।
2. दिवसान्तकमलम्- दिवसस्य अन्तम् इति ष०तत्पु०। दिवसान्ते कमलम् यथा स्यात् तथा दिवसान्तकमलं (स०तत्पु०)।
3. समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलम्- सम्यक् उपचितम् इति समुपचितम् (सम्+उप √चि+क्त) (सुप्सुपा)। मूलं च दण्डश्च कोशश्च मण्डलञ्च इत्येतेषां समाहारः इति द्वन्द्वः मूलदण्डकोशमण्डलम्। समुपचितं मूलदण्डकोशमण्डलम् यस्य सः (बहु०) तम्।
4. भूभुजम्- भुवं भुङ्क्ते भुनक्ति वा इति तम्। भुज्+क्विप्। द्वि०ए०व०।

विशेष - उपमा अलंकार है।

लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुदचञ्चला।

शब्दार्थ -

लता=लता (वल्ली) के। इव=समान। विटपकान्=वृक्षों को (लक्ष्मी के पक्ष में नीच पुरुष)। अध्यारोहति=(लता पक्ष में) चढ़ जाती है। (लक्ष्मी पक्ष में) आश्रय लेती है। गङ्गा=गंगा (के)। इव=समान। वसुजननी=वसुओं की माता (होने पर)। अपि=भी। तरङ्ग=लहर। बुद्बुद=बुलबुलों (के समान)। चञ्चला=चपला (है)।

अनुवाद -

लता की भाँति (यह लक्ष्मी) धूर्तों का (लता पक्ष में वृक्षों का) आश्रय लेती है। गङ्गा की भाँति यह धन (गङ्गा के पक्ष में वसु नामक आठ प्रसिद्ध देवता) की जननी होते हुए भी लहरों और बुलबुलों के समान (गङ्गा के पक्ष में लहरों और बुलबुलों के कारण) चपला है।

टिप्पणी -

जिस प्रकार लता वृक्षों पर चढ़ जाती है उसी प्रकार लक्ष्मी धूर्तों का आश्रय लेती है। गङ्गा के वसुजननी होने के संबंध में एक पौराणिक कथा प्रसिद्ध है- गङ्गा को आठ वसुओं की माता कहा जाता है। एक बार धव, ध्रुव, सोम, भद्र,

अनल, अनिला, प्रत्यूष तथा प्रभास नाम के आठ वसु वसिष्ठ की कामधेनु को चुराने के लिए गये जिन्हें वसिष्ठ ने पृथ्वी पर पैदा होने का शाप दिया और जिनकी मुक्ति मानव शरीर प्राप्त करके गङ्गा में डूबने से होनी थी। इधर गङ्गा को भी दुर्वासा ने पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दिया हुआ था। यह गङ्गा राजा शन्तनु की पत्नी हुयी। शन्तनु एक चन्द्रवंशी राजा हुए जिन्होंने गङ्गा तथा सत्यवती से विवाह किया। गङ्गा से शन्तनु ने विवाह करने की इच्छा प्रकट की परन्तु गङ्गा ने एक शर्त रखी। वह शर्त यह थी कि शन्तनु गङ्गा को कभी कुछ नहीं कहेंगे। समय बीतने के साथ-साथ गङ्गा ने आठ पुत्रों को जन्म दिया। शर्त के अनुसार गङ्गा ने अपने सात पुत्रों को तो जल की धारा में बहा दिया परन्तु जब वह आठवें पुत्र को बहाने लगी तब शन्तनु ने उसे रोका। इस प्रकार आठवें पुत्र (भीष्म) का मोक्ष नहीं हुआ। तत्पश्चात् अभिशप्त गङ्गा अपने वास्तविक रूप में आ गई। इस प्रकार गङ्गा आठ वसुओं की माता कहलाई।

संस्कृत-टीका (आ०च०सि०च० टीका)-

लता वल्ली सेव विटा भाण्डादयस्तान्पान्तीति विटपाः। विटपा एव विटपकाः। स्वार्थे कप्रत्ययः पक्षे विटपा वृक्षाः। विटपानध्यारोहत्याश्रयणं करोति। गङ्गा स्वर्धुनी सेव वसु द्रव्यं तज्जनन्यपि तरङ्गा भङ्गाः बुद्बुदः स्थासकस्तद्वच्चञ्चला चपला। पक्षे वसोर्भीष्मस्य (जननी) तरङ्गबुद्बुदाभ्यां चाञ्चल्यवती च।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. विटं विस्तारं पाति इति विटपः (विट √पा+क) विटप एव विटपकः (स्वार्थे क प्रत्ययः) तान्। लक्ष्मीपक्षेविटपकान् कामुकान्।
2. अध्यारोहति- अधि+आ+ √रुह् बीजजन्मनि प्रादुर्भावे लट् प्र०पु०ए०व०।
3. वसुजननी- वसूनां धनानाम् अष्टानां देवविशेषाणाञ्च जननी इति ष०तत्पु०।
4. तरङ्गबुद्बुदचञ्चला- तरङ्गाः च बुद्बुदाश्च इति द्व०स०। तरङ्गबुद्बुदवच्चञ्चला। (क०धा०)। तरङ्गबुद्बुदैः चञ्चला इति तृ०तत्पु०।

विशेष - उपमा अलंकार है।

दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः/ पातालगुहेव तमोबहुला।

शब्दार्थ -

दिवसकर=सूर्य (की)। गतिरिव=गति के समान। विविध=अनेक प्रकार से (लोगों में अथवा वस्तुओं में, सूर्य पक्ष में राशियों में)। संक्रान्तिः=संक्रमण

(को)। प्रकटित=दर्शाती है। पातालगुहा=पाताल गुफा (के)। इव=समान। तमोबहुला=अज्ञानबहुला (सूर्य पक्ष में अन्धकार-बहुला अथवा तमोगुणबहुला) है।

अनुवाद -

अनेक राशियों में संक्रमण करने वाले सूर्य की गति के समान (यह लक्ष्मी) विविध प्रकार की वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के साथ संबंध रखती है। अन्धकारयुक्त पाताल की गुफा के समान (यह लक्ष्मी) तमोगुण से युक्त (अज्ञान को उत्पन्न करने वाली) है।

टिप्पणी -

सूर्य एक वर्ष में मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन इन बारह राशियों में संक्रमण करता है। सूर्य का एक राशि से अन्य राशि में यह संक्रमण ही 'संक्रान्ति' कहलाता है। जिस प्रकार पाताल की गुफा में अंधकार व्याप्त रहता है उसी प्रकार लक्ष्मी तमोगुणबहुला होने के कारण अज्ञान से परिपूर्ण है।

संस्कृत-टीका - (भा०च०सि०च० टीका)

दिवसकरः सूर्यस्तस्य या गतिर्गमनं सेव प्रकटिताविष्कृता। विविधानेकप्रकारा सङ्क्रान्तिर्वस्तुनेच्छासम्बन्धो यया सा पक्षे राशिषु सूर्यसम्बन्धः। पातालं वडवामुखं तस्य गुहा कन्दरा सेव तमोगुणस्तेन बहुला दृढा। पक्षे तमोऽन्धकारः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. दिवसकरगतिः- दिवसं करोति इति दिवसकरः इति उपपद तत्पु०। दिवसकरस्य गतिः इति ष०तत्पु०।
2. प्रकटितविविधसंक्रान्तिः- प्रकटिता विविधेषु (जनेषु राशिषु च) संक्रान्तिः यया सा (बहु०)।
3. पातालगुहा - पातालस्य गुहा (ष०तत्पु०)।
4. तमोबहुला-तमसा (अन्धकारेण तमोगुणेन च) बहुला इति तृ०तत्पु०।

विशेष - उपमा अलंकार है।

हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया। प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी।

शब्दार्थ -

भीम=भीम (के)। साहसैक=साहस मात्र (से)। हार्य=आकृष्ट। हृदय=हृदय वाली। हिडिम्बा=हिडिम्बा। इव=के समान। अचिर=क्षणिक। द्युति=विद्युत (को)। कारिणी=उत्पन्न करने वाली। प्रावृट्=वर्षा (के)। इव=समान।

अनुवाद -

भीम के साहस मात्र से आकृष्ट हृदय वाली हिडिम्बा के समान (यह लक्ष्मी भी साहसिक कार्यों से ही आकर्षित होने वाली है)। क्षण-भङ्गुर विद्युत को उत्पन्न करने वाली वर्षा के समान यह लक्ष्मी शीघ्र ही समाप्त हो जाने वाली चमक (धन की चकाचौंध) को उत्पन्न करती है।

टिप्पणी -

महाभारत में कथा आती है- लाक्षागृह में से बिलमार्ग द्वारा बाहर निकले हुए पाण्डव वन में प्रविष्ट हुए। वहाँ हिडिम्ब नामक राक्षस द्वारा भेजी गयी हिडिम्बा पाण्डवों के पास आई। उसका भीम के साथ आलाप हुआ। तभी हिडिम्ब आ पहुँचा। हिडिम्बा भयभीत हो गयी। हिडिम्ब और भीम में युद्ध हुआ। हिडिम्ब मारा गया। हिडिम्बा ने कुन्ती के प्रति अपने मनोभाव का निवेदन किया। युधिष्ठिर के कहने पर भीम ने हिडिम्बा का वध नहीं किया। भीमसेन को हिडिम्बा ने विवाह के लिए प्रार्थना की क्योंकि वह भीम के साहस पर मुग्ध हो गयी थी। हिडिम्बा-भीमसेन के समागम होने पर घटोत्कच का जन्म हुआ। (आदिपर्व- 15-155अ०)।

सस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका)

हिडिम्बेव घटोत्कचप्रसूरिव भीमसाहसेनातिकठिनकर्मणैकमद्वितीयं हार्द (र्यं) हृदयं यस्याः। पक्षे भीमस्य वृकोदरस्य यः साहसगुणः प्रावृडिति। प्रावृड्वर्षाकालः सेवाचिरा स्वल्पकालीना या द्युतिः प्रकाशस्तत्कारिणी। पक्षेऽचिरद्युतिर्विद्युत्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. भीमसाहसैकहार्यहृदया-भीमश्च साहसः भीमसाहसः (क०धा०) भीमस्य साहसः इति ष०तत्पु०। भीमसाहसेन एकेन हार्यं हृदयं यस्याः सा इति बहु०।
2. अचिरद्युतिकारिणी- अचिरा द्युतिः इति अचिरद्युतिः। तां कर्तुं शीलं यस्याः सा इति बहु०। (कारिणी- √कृ+णिनि+ङीप्)।

विशेष - उपमा अलंकार है।

दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति।

शब्दार्थ -

दुष्ट=क्रूरा। पिशाची=राक्षसी। इव=के समान। अनेक-पुरुष=अनेक पुरुषों की। उच्छ्राया=उन्नति को (राक्षसी पक्ष में ऊँचाई) को। दर्शिता=दिखाकर। स्वल्पसत्त्वम्=कम बुद्धि वाले (कम साहस वाले को)। उन्मत्तीकरोति=उन्मत्त बना देती है।

अनुवाद -

क्रूर पिशाचिनी के समान (यह लक्ष्मी) अनेक पुरुषों की उन्नति (राक्षसी पक्ष में ऊँचाई) दिखाकर अल्प बुद्धि (पक्षान्तर में अल्पबल) वाले व्यक्ति को (उन्नति की आशा में, पिशाची पक्ष में भय से) उन्मत्त बना देती है।

टिप्पणी -

भाव यह है कि जिस प्रकार पिशाची अपने शरीर को अनेक पुरुषों की लंबाई जितना विशालकाय दिखाकर दुर्बल व्यक्ति को उन्मत्त कर देती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी धन के अतिशय से अनेक पुरुषों को अत्युन्नत दिखाकर अल्पबुद्धि लोगों को (जो लक्ष्मी की अधिकता से होने वाले दुष्परिणामों को नहीं जानते) उन्नति (बहुत धन पाने की लिप्सा) के पीछे उन्मत्त बना देती है।

संस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका) -

दुष्टेति। दुष्टा क्रूरा या पिशाची सेव दर्शितः प्रकटीकृतोऽनेकपुरुषाणामुच्छ्रायोऽभ्युन्नतिर्यया सा। पक्षे ऊर्ध्वीकृतभुजपाणिनरमानं पुरुषः। अनेकपुरुषाणामुच्छ्राय उच्चता। एवंभूता लक्ष्मीः स्वल्पसत्त्वमल्पसाहसं नरमुन्मत्तीकरोत्युन्मत्ततां नयति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया- अनेके पुरुषाः इति अनेकपुरुषाः (क०धा०)। अनेकपुरुषाणाम् उच्छ्रायः अनेकपुरुषोच्छ्रायः इति ष०तत्पु०। दर्शितः अनेकपुरुषोछ्रायः यया सा इति बहु०।
2. उन्मत्तीकरोति-अनुन्मत्तम् उन्मत्तं करोतीति। उन्मत्त-च्वि √कृ लट् ल०प्र०पु०ए०व०।

विशेष - पूर्णोपमा अलंकार है।

सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति जनम्। गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति।

शब्दार्थ -

सरस्वती=सरस्वती के द्वारा। परिगृहीतम्=स्वीकार किये गये (आश्रय बनाये गये)। जनम्=पुरुष को। ईर्ष्यया=ईर्ष्या (जलन) से। इव=मानो। नालिङ्गति=आलिङ्गन नहीं करती (आश्रय नहीं बनाती)। गुणवन्तम्=(शौर्यादि) गुणों से युक्त। (पुरुष को)। अपवित्र=अशुभ (अपावन)। इव=के समान। न स्पृशति=स्पर्श नहीं करती है।

अनुवाद -

सरस्वती के द्वारा स्वीकार किये गये (विद्वान्) पुरुष को मानो ईर्ष्या से आलिङ्गन नहीं करती है। गुणवान व्यक्ति को (अमंगल) अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती है।

टिप्पणी -

ऐसा प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी तथा सरस्वती की आपस में शत्रुता है और इसी कारण प्राय: धनसम्पन्न व्यक्ति के पास विद्या का अभाव तथा विद्यासम्पन्न के पास धन का अभाव संसार में देखा जाता है।

संस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका)

सरस्वतीति। सरस्वती भारती तया परिगृहीतं नरमीर्ष्ययेव मत्सरेणेव नालिङ्गति नाश्लिष्यति। गुणवन्तं शौर्यादिगुणोपयुक्तं जनं नरमपवित्रमिवापावनमिव न स्पर्शं करोति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. सरस्वतीपरिगृहीतम्-सरस्वत्या परिगृहीतम्। परि √ग्रह्+क्त् द्वि०वि०ए०व०। तृ०तत्पु०।

विशेष - उत्प्रेक्षा और समासोक्ति अलंकार है।

उदारसत्त्वममङ्गलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति।

शब्दार्थ -

उदारसत्त्वम्=उदार हृदय वाले (व्यक्ति) को। अमङ्गलमिव=अशुभ के समान। बहु=बहुत अधिक। न=नहीं मानती (सम्मान नहीं करती)। सुजनम्=सज्जन पुरुष को। अनिमित्तम्=अपशकुन। इव=के समान। न=नहीं। पश्यति=देखती है।

अनुवाद -

(यह लक्ष्मी) उदार हृदय वाले व्यक्ति का अशुभ के समान आदर नहीं करती है। सज्जन पुरुष को अपशकुन के समान नहीं देखती है।

संस्कृत-टीका - (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

उदारं स्फारं सत्त्वं यस्यैवंविधं पुरुषममङ्गलमिव न बहु मन्यते नादरं करोति। सुजनं शुभजनमनिमित्तमिव निष्फलमिव न पश्यति नावलोकयति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उदारसत्त्वं-उदारं सत्त्वं यस्य सः (बहु॰) तम्।
2. सुजनम्-शोभनः जनः यः सः इति तम् बहु॰।

विशेष - उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अभिजातमहिमिव लङ्घयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नम् इव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति।

शब्दार्थ -

अभिजातम्=कुलीन को (उच्च कुलोत्पन्न)। अहिम्=साँप। इव=के समान। लङ्घयति=लाँघ जाती है (उत्क्रमण कर जाती है)। शूरम्=वीर को। कण्टकमिव=काँटे के समान। परिहरति=छोड़ देती है (परित्याग कर देती है)। दातारं=दानी को। दुःस्वप्नम्=अशुभ स्वप्न (के)। इव=समान। न=नहीं। स्मरति=स्मरण करती है। विनीतं=विनम्र को। पातकिनमिव=पापी के समान। न उपसर्पति=पास नहीं जाती। मनस्विनम्=मनस्वी को। उन्मत्तम्=विक्षिप्त (पागल)। इव=के समान। उपहसति=उपहास करती है (हँसी उड़ाती है)।

अनुवाद -

(यह लक्ष्मी) कुलीन को साँप के समान लाँघ जाती है। वीर को काँटे के समान छोड़ देती है। दानी को अशुभ स्वप्न के समान याद नहीं करती है। विनम्र व्यक्ति के पास पापी के समान नहीं जाती। मनस्वी का विक्षिप्त के समान उपहास करती है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

अभिजातं कुलीनमहिमिव लङ्घयत्युत्क्रामयति। शूरमिति। शूरं शौर्यगुणोपेतं कण्टकमिव परिहरति दूरतस्त्यजति। दातारमिति। दातारं बहुप्रदं दुःस्वप्नमिवाशुभस्वप्नमिव न स्मरति न स्मृतिविषयीकरोति। विनीतमिति। विनीतं विनयगुणोपेतं पातकिनमिव पापकारिणमिव नोपसर्पति न पार्श्वे प्रयाति। मन इति। मनस्विनं पण्डितमुन्मत्तमिव ग्रथिलमिवोपहसत्युपहासं करोति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अभिजातम्-प्रशस्तं जातं यस्य सः अभिजातः (बहु॰) तम्, अभि √जन्+क्त द्वि॰वि॰ए॰व॰।
2. लङ्घयति- √लङ्घ् लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
3. परिहरति-परि √हृ लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
4. दातारम्- √दा तृच् द्वि॰वि॰ए॰व॰।
5. दुःस्वप्नम्- दुष्टः स्वप्नः दुःस्वप्नः (प्रादि) तम्।
6. विनीतम्- वि √नी +क्त द्वि॰वि॰ए॰व॰।
7. उपसर्पति-उप √सृप् लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
8. मनस्विनम्- प्रशस्तं मनः यस्य सः (बहु॰) तम्, मनस्+विन द्वि॰वि॰ए॰व॰।

विशेष - उपमा अलंकार है।

परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्।

शब्दार्थ -

च=और। जगति=संसार में। परस्परविरुद्धम्=आपस में असम्बद्ध। निजं=अपने। चरितम्=चरित्र को। इव=मानो। इन्द्रजालम्=जादू को। दर्शयन्ती=दिखाती हुयी। प्रकटयति=प्रकट करती है।

अनुवाद-

और (यह लक्ष्मी) संसार में परस्पर विपरीत अपने चरित्र को दिखाती हुयी मानो जादू को प्रकट करती है (संसार के समक्ष प्रस्तुत करती है)।

टिप्पणी -

प्राचीन काल में राक्षस इन्द्र को छलने के लिए अनेक मायाजाल किया करते थे, इन प्रपंचों को ही 'इन्द्रजाल' कहा जाता था। धीरे-धीरे यह शब्द सामान्य रूप से जादू के अर्थ में रूढ़ हो गया।

संस्कृत-टीका - (ब॰भा॰सि॰च॰ टीका)

इन्द्रेति। इन्द्रजालमिव कुहकमिव परस्परविरुद्धमन्योन्यासम्बद्धं दर्शयन्ती प्रकाशयन्ती निजमात्मीयं चरितं वृत्तं जगतिलोके प्रकटयत्याविष्करोति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. परस्परविरुद्धम् परस्परं विरुद्धम् परस्परविरुद्धम् (क॰धा॰)।

2. दर्शयन्ती- √दृश्+शतृ+ङीप्। स्त्री प्र॰वि॰ए॰व॰।
3. आविष्करोति- आविस् + √कृ लट् ल॰प्र॰पु॰ए॰व॰।

विशेष - उत्प्रेक्षा अलंकार है।

तथाहि-सततम् ऊष्माणम् आरोपयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति।

शब्दार्थ -

तथाहि=जैसे कि। सततम्=निरन्तर। ऊष्माणं=ताप को (स्वभाव में गर्मी, उत्तेजना, उग्रता, दर्प)। आरोपयन्ती=प्रवर्तित करती हुयी। अपि=भी। जाड्यं=मूर्खता (अकर्मण्यता)। को। उपजनयति=उत्पन्न करती है। उन्नतिम्=उच्चता को (ऐश्वर्य, समृद्धि आदि)। आदधाना=धारण करती हुयी। अपि=भी। नीचस्वभावताम्=निकृष्ट स्वभाव को। आविष्करोति=प्रकट करती है।

अनुवाद -

जैसे कि लगातार (स्वभाव में) उग्रता को प्रवर्तित करती हुयी भी निष्क्रियता को उत्पन्न करती है। उच्चता को धारण करती हुयी भी निकृष्ट स्वभाव को प्रकट करती है।

टिप्पणी -

लक्ष्मी के परस्पर विरोधी स्वभाव को ऊपर बताया गया उसी के उदाहरण स्वरूप कहते हैं कि एक ओरं धन की गर्मी से मनुष्य के स्वभाव में उग्रता आती है दूसरी ओर उसकी बुद्धि धन के मद से भ्रमित हो जाती है। आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ प्रायः देखा जाता है कि मानव स्वभाव में कृपणता, निर्दयता आदि अवगुण बढ़ जाते हैं।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)-

तदेव दर्शयति-तथाहीति। सततं निरन्तरमूष्माणं तापमुपजनयन्त्यपि कुर्वन्त्यपि जाड्यं शैत्यमुपजनयतीति विरोधः शब्दः। तत्परिहारस्तूष्माणं दर्प शैत्यं जाडयमित्यर्थात्। उन्नतिमादधानापि धारयन्त्यपि नीचस्वभावतामाविष्करोतीति विरोधः। तत्परिहारस्तून्नतिमुत्कर्षं नीचस्वभावोऽकर्त्तव्यं कर्मेत्यर्थात्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. आरोपयन्ती-आ √रुह्+णिच् (पुक्)+शतृ+ङीप्।
2. जाड्यम्-जडस्य भावः (जड+ष्यञ्)।

3. उन्नतिम्-उद् √नम्+क्तिन् द्वि॰वि॰ए॰व॰।
4. आदधाना- आ √धा+शानच्+टाप्। प्र॰वि॰ए॰व॰।
5. स्वभावताम्-स्वस्य भावः स्वभावः (ष॰तत्पु॰) ताम्।

विशेष - विरोधाभास अलंकार है।

तोयराशिसम्भवापि तृष्णां संवर्द्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति।

शब्दार्थ -

तोयराशि (राशेः)=समुद्र से। सम्भवा=उत्पन्न। अपि=भी। तृष्णां=प्यास को। संवर्द्धयति=बढ़ाती है। ईश्वरतां=ऐश्वर्य (कल्याण) को। दधाना=धारण करती हुयी। अपि=भी। अशिव=अशुभ। प्रकृतित्व=स्वभावता को। आतनोति=विस्तार करती है। बलोपचयम्=शक्ति के विकास को। आहरन्त्यपि=लाती (करती) हुयी भी। लघिमानम्=क्षुद्रता को (छोटेपन को)। आपादयति=उत्पन्न करती है।

अनुवाद -

समुद्र से उत्पन्न हुयी भी (यह लक्ष्मी) प्यास को बढ़ाती है। ऐश्वर्य को धारण करती हुयी भी अशुभ स्वभावता का विस्तार करती है। शक्ति के विकास को करती हुयी भी क्षुद्रता को उत्पन्न करती है।

टिप्पणी -

तोयराशि (जलराशि) अर्थात् समुद्र से उत्पन्न हुयी भी लक्ष्मी धनप्राप्ति रूपी प्यास को बढ़ाती है। जितनी समृद्धि व्यक्ति के पास आती जाती है और अधिक पाने की लालसा में उतने ही अशुभ कर्म वह करने लगता है। लक्ष्मी के आने से जितना शक्ति का विकास होता है उतना हीं और अधिक राज्य-प्राप्ति आदि की इच्छा से वह निकृष्ट कार्य करने लगता है। इस प्रकार यह विरोधी स्वभाव वाली है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

तोयराशिः समुद्रस्तस्मात्सम्भवापि समुत्पन्नापि तृष्णां सम्वर्धयतीति विरोधः। तत्परिहारस्तु तृष्णां गार्ध्यमित्यर्थात्। ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमनीश्वरप्रकृतित्वमातनोतीति। विरोधः, तत्परिहारस्त्वीश्वरतां प्रभुतामशिवमशुभमित्यर्थात्। बलोपचयमाहरन्त्यप्यानयन्त्यपि लघिमानमापादयतीति विरोधः। तत्परिहारस्तु बलोपचयं सैन्यसमूहं लघिमानं कार्पण्यमित्यर्थात्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. तोयानां राशिः तोयराशिः इति ष०तत्पु०। तोयराशेः सम्भवा (सम् √भू+अप्+टाप्) प०तत्पु०।
2. संवर्धयति-सम् √वृध्+णिच् लट् प्र०पु०ए०व०।
3. ईश्वरताम्-ईश्वरस्य भावः ईश्वरता (ईश्वर+तल्) ताम्।
4. दधाना- √धा+शानच्+टाप् स्त्री०प्र०वि०ए०व०।
5. अशिवप्रकृतित्वम्-शिवा चासौ प्रकृतिः च शिवप्रकृतिः (क०धा०) शिवप्रकृतेः भावः शिवप्रकृतित्वम्, न शिवप्रकृतित्वम् (नञ्)।
6. आतनोति- आ √तन् लट् प्र०पु०ए०व०।
7. बलोपचयम्-बलस्य उपचयः बलोपचयः (ष०तत्पु०) तम्। उपचयः- उप √चि+अच्।
8. आहरन्ती-आ √हृ+शतृ+ङीप् स्त्री०प्र०पु०ए०व०।
9. लघिमानम्-लघोर्भावः, लघु+इमानिच् द्वि०वि०ए०व०।
10. आपादयति-आ √पद्+गतौ णिच् लट् प्र०पु०ए०व०।

विशेष - विरोधाभास अलंकार है।

अमृतसहोदरापि कटुविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया।

शब्दार्थ -

अमृत=अमृत की। सहोदरा=सगी बहन (होते हुए)। अपि=भी। कटुविपाका=अन्त में कड़वी लगने वाली (दुष्परिणाम वाली)। विग्रहवती अपि=मूर्तिमती (शरीधारिणी) होते हुए भी। अप्रत्यक्षदर्शना=प्रत्यक्ष रूप से दिखायी न देने वाली। पुरुषोत्तम=उत्तम पुरुष (विष्णु) में। रता अपि=अनुरक्त होती हुयी भी। खलजन=दुष्ट मनुष्य (की) प्रिया-प्रिया।

अनुवाद -

अमृत की सगी बहन होने पर भी कड़वे परिणाम वाली है। शरीरधारिणी होते हुए भी प्रत्यक्ष दिखायी न देने वाली है। सर्वश्रेष्ठ पुरुष में अनुरक्त होती हुयी भी दुष्ट मनुष्य की प्रिया है।

टिप्पणी -

समुद्र मन्थन के समय अमृत और लक्ष्मी दोनों का जन्म समुद्र से हुआ ऐसा माना जाता है। समान उदर से उत्पन्न होने के कारण 'अमृतसहोदरा' कहा गया

है। अमृत तो व्यक्ति को अमरत्व प्रदान करने वाला है अतः मधुर एवं सुखद परिणाम वाला है, परन्तु यह लक्ष्मी अमृत की सहोदरा तो है पर अन्त में कड़वी लगने वाली है अर्थात् अंत में दुःख देने वाली है। संसार में धन-सम्पत्ति के कारण लड़ाई-झगड़े होते हैं। इस प्रकार युद्धादि की कारणभूता होने से शरीर धारिणी होते हुए भी नेत्रों से दिखायी नहीं देती। पुराण-प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी नारायण-प्रिया है। अतः पुरुषोत्तम का अर्थ यहाँ विष्णु है। तथापि यह प्रायः दुष्टों का ही साथ देती है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

अमृतसहोदराप्यमृतेन सहोत्पन्नापि कटुकरसोपेतो विपाको यस्या इति विरोधः। तत्परिहारस्तु कटुको दुःखदायीत्यर्थात्। विग्रहवत्यपि मूर्तिमत्यप्यप्रत्यक्षमगम्यं दर्शनं यस्या इति विरोधः। तत्परिहारस्तु विग्रहवती कलहवतीत्यर्थात्। पुरुषोत्तमरतापि खला ये दुर्जना जनास्ते प्रिया इति विरोधः। तत्परिहारस्तु पुरुषोत्तमे कृष्णे रत मैथुनं यस्या एवंविधापि खलजनानां प्रिया वल्लभेत्यर्थात्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अमृतसहोदरा-समानं उदरं यस्याः सा सहोदरा इति बहु॰। अमृतस्य सहोदरा इति ष॰तत्पु॰।
2. कटुकविपाका-कटुकः विपाकः यस्याः सा इति बहु॰।
3. विग्रहवती-विग्रह+मतुप्+ङीष् प्र॰वि॰ए॰व॰।
4. अप्रत्यक्षदर्शना-प्रत्यक्षं दर्शनं यस्याः सा प्रत्यक्षदर्शना (बहु॰) न प्रत्यक्षदर्शना इति नञ् तत्पु॰।
5. पुरुषोत्तमरता-पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः इति स॰तत्पु॰। पुरुषोत्तमे रता इति स॰तत्पु॰।
6. खलजनप्रिया-खलाश्च ते जनाश्च इति कर्म॰। खलजनानां प्रिया इति ष॰तत्पु॰ प्र॰वि॰ए॰व॰।

विशेष - विरोधाभास अलंकार है।

रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति। यथायथा चेयं चपला दीप्यते तथातथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति।

शब्दार्थ -

रेणु=धूलि (रज से)। मयी इव=निष्पन्न (युक्त) सी। स्वच्छम् अपि=निर्मल

(वस्तु) को भी। कलुषीकरोति=मलिन कर देती है। च=और। यथायथा=जैसे-जैसे। इयं=यह। चपला=चञ्चला। दीप्यते=प्रदीप्त होती है। यथा-तथा=वैसे-वैसे। दीपशिखा=दीपशिखा (दीपक की ज्वाला या लौ) से। कज्जल=काजल। इव=के समान। केवलम्=केवल। मलिनम्=मलिन (दूषित) कर्म=कर्मों (को)। एव=ही। उद्वमति=उगलती है।

अनुवाद -

धूलि से युक्त सी (यह लक्ष्मी) निर्मल (वस्तु) को भी मलिन कर देती है। और जैसे-जैसे यह चञ्चला प्रदीप्त होती है वैसे-वैसे दीपक की लौ से काजल के समान दूषित कर्मों को ही उगलती है।

टिप्पणी -

धूलिमयी सी यह लक्ष्मी किस प्रकार निर्मल वस्तु को भी मलिन कर देती है- जिस व्यक्ति के पास जितनी अधिक धन-सम्पत्ति आती जाती है उतना ही वह और अधिक पाने के लिए अशुभ कर्मों एवं अनुचित मार्गों की ओर अग्रसर होता जाता है और तब उसकी प्रत्येक वस्तु पर उसके अहंकार एवं दुष्कर्मों का ऐसा आवरण चढ़ जाता है जो उसे मलिन कर देता है और उसकी कीमती वस्तुएं भी दूषित सी प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार का भाव अग्रिम पंक्ति में है जिस प्रकार दीपक की लौ जितनी अधिक दीप्त होती है उतना ही काजल उत्पन्न करती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी जितनी प्रभावशाली होती जाती है उतने ही अधिक दुष्कर्मों को उत्पन्न करती है।

संस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका)

रेणुमयीव रजोगुणमयीव स्वच्छमपि निर्मलमपि कलुषीकरोति मलिनीकरोति। यथेति। यथायथेयं लक्ष्मीश्चपला चञ्चला दीप्यते भवति तथातथा केवलं दीपशिखेव कज्जलवन्मलिनं कल्मषं। कर्मोद्वमत्युद्गिरति। दीपशिखापि कज्जललक्षणं यन्मलिनं कर्म तदेवोद्वमति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. रेणुमयी-रेणु+मयट्+ङीष् प्र०वि०ए०व०।
2. कलुषीकरोति- अकलुषं कलुषं करोति इति कलुष+च्वि √कृ लट् ल० प्र०पु०ए०व०।
3. दीपशिखा-दीपस्य शिखा इति ष०तत्पु०।
4. दीप्यते- √दीप् दीप्तौ लट् ल०प्र०पु०ए०व०।

5. कज्जलमनिलम्- कज्जलवत् मलिनं तत् उपपद स०।

6. उद्वमति- उत् उप० √वम् उदि्गरणे लट् ल०प्र०पु०ए०व०।

विशेष - उपमा अलंकार है।

तथाहि-इयं संवर्द्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्। व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्। परामर्श धूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्। विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्। निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्। तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्।

शब्दार्थ -

तथाहि=क्योंकि। इयं=यह (लक्ष्मी)। तृष्णा=लोभ (रूपी)। विषवल्लीनाम्=विषलताओं की। संवर्द्धन=बढ़ाने वाली। वारिधारा=जल धारा। इन्द्रियमृगाणाम्=इन्द्रियों रूपी हरिणों का। व्याधगीतिः=शिकारी का गान। सच्चरित=सदाचरण। चित्राणाम्=आलेखों की। परामर्श-आवृत करने वाली। धूमलेखा=धूमपंक्ति। मोहदीर्घनिद्राणाम्=मोह (मूर्च्छा) (कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य अविवेक) लंबी नींद की। विभ्रमशय्या=विलास शय्या (सुखकारी बिस्तर)है। धनमदपिशाचिकानाम्= धनाभिमान रूपी राक्षसियों के। निवासजीर्णवलभी=रहने के लिए प्राचीन अटारी (चंद्रशाला) है। शास्त्रदृष्टीनाम्=शास्त्र रूपी नेत्रों। तिमिरोद्गतिः=तिमिर रोग (मोतियाबिन्द) का प्रादुर्भाव है।

अनुवाद -

क्योंकि यह (लक्ष्मी) तृष्णा (धनलिप्सा) रूपी विषलताओं को बढ़ाने वाली जलधारा है। इन्द्रियों रूपी हरिणों के लिए बहेलियों का गीत है। सच्चरित्र रूपी चित्रों को आवृत करने वाली धूमपंक्ति है। मोह रूपी लम्बी-नींद के लिये विलास-शय्या है। धन के अभिमान रूपी राक्षसियों के रहने के लिए वह पुरानी अटारी है। शास्त्र रूपी नेत्रों के लिए तिमिर रोग की उत्पत्ति है।

टिप्पणी -

जिस प्रकार जलधारा से लगातार सींचने पर विषलता खूब बढ़ती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी धनलिप्सा रूपी विषलताओं को पोषित करती है तात्पर्य यह है कि अत्यधिक धन की इच्छा सुखद परिणाम वाली होती है और धन जितना व्यक्ति को मिलता जाता है उतना ही अधिक पाने की इच्छा बढ़ती जाती है। यहाँ लक्ष्मी में जल धारा का धनलिप्सा में विषलता का आरोप किया गया है। शिकारी जैसे मधुर गीत गाकर हरिणों को आकर्षित कर लेता है और फिर उनका

शिकार करता है उसी प्रकार लक्ष्मी रूपी शिकारी का गीत इन्द्रियों रूपी हरिणों को सम्मोहित कर लेता है। धन और समृद्धि इन्द्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करके उन्हें विषय-भोगों का अभ्यस्त बना कर विनाश के कगार पर ले आते हैं। जिस प्रकार धूमरेखा अच्छे चित्रों को भी धूमिल कर देती है उसी प्रकार यह दुष्टा लक्ष्मी अच्छे चरित्रवान् लोगों को भी अपने प्रभाव में लेकर उनके सद्गुणों को धूमिल कर देती है, अवगुणों में परिवर्तित कर देती है। जैसे कोमल शय्या पर सुध-बुध खो देने वाली नींद आती है वैसे ही इस लक्ष्मी रूपी शय्या पर मोह (उचित अनुचित का ज्ञान न रहना) रूपी निद्रा लम्बे समय के लिए रहती है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

तदेव दर्शयति- तथाहीति। तृष्णा लोभस्तल्लक्षणानां विषवल्लीनां संवर्धने विस्तारणे वारिधारा जलश्रेणिः। अत्र श्रीजलधारयोर्वद्धिहेतुत्वेन साम्यम्। छेदयोग्यतया तृष्णावल्लयोः साम्यम्। व्याधेति। व्याधगीतिर्मृगवधजीविगानमिन्द्रियमृगाणामक्षहरिणानाम्। अत्र नाशकत्वसाम्याच्छ्रीगीत्योः साम्यम्। गानलुब्धाश्च मृगा हन्यन्त इति सर्वप्रसिद्धम्। सच्चरितानि सदाचरणानि तान्येव चित्राणि तेषां परामर्श आचमनं तदर्थं या धूमलेखा धूमपङ्क्तिः। लोकैः कफनिवृत्त्यर्थं द्रव्यान्तरस्य धूम्रपानं कृत्वा पश्चात्स एवोदीर्यते तत्स्पर्शादेवालेख्यं विनश्यतीति भावः। मोह इति। मोहो मौढ्यम्, दीर्घनिद्रा निमीलितानि (?), तासां विभ्रमशय्या विलासशयनम्। धनेति। धनानि द्रव्याणि, मदो मुन्मोहसम्भेदः त एव पिशाचिन्यस्तासां निवासार्थं जीर्णा वलभी गृहोपरिभागः। तिमिरेति। शास्त्राण्येव दृष्टयस्तासां तिमिरस्य नेत्ररोगविशेषस्योद्गतिः प्रादुर्भावः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. संवर्धनवारिधारा-वारीणां धारा इति ष॰तत्पु॰। संवर्धनाय (सम्+ √वृध् वृद्धौ+ल्युट् च॰वि॰ए॰व॰) वारिधारा इति च॰तत्पु॰।
2. तृष्णाविषवल्लीनाम्- विषस्य वल्लयः विषवल्ल्यः इति ष॰तत्पु॰। तृष्णाएव विषवल्लयः तृष्णाविषवल्लयः (क॰धा॰) तासाम्।
3. व्याधगीतिः- व्याधस्य गीतिः इति ष॰तत्पु॰। √गै शब्दे+क्तिन् प्र॰वि॰ए॰व॰।
4. इन्द्रियमृगाणाम्-इन्द्रियाः एव मृगाः इति कर्म॰। तेषाम्
5. परामर्शधूमलेखा- धूमस्य लेखा इति ष॰तत्पु॰। परामर्शाय (परा+ √मृश् आमर्शने+घञ्। च॰वि॰ए॰व॰) धूमलेखा इति च॰तत्पु॰।

6. सच्चरितचित्राणाम्-सतां चरितानि इति ष०तत्पु०। सच्चरितानि एव चित्राणि सच्चरितचित्राणि (क०धा०) तेषाम्।
7. मोहदीर्घनिद्राणाम्- मोह एव दीर्घनिद्रा येषां तेषाम् इति कर्म०गर्भित बहु०।
8. विभ्रमशय्या-विभ्रमानां शय्या इति ष०तत्पु०।
9. निवासजीर्णवलभी-जीर्णा चासौ वलभी जीर्णवलभी इति क०धा०। निवासाय जीर्णवलभी इति च०तत्पु०।
10. धनमदपिशाचिकानाम्-धनानां मदाः इति ष०तत्पु०। धनमदाः एव पिशाचिकाः। तासाम्। कर्म०धा०।
11. शास्त्रदृष्टीनाम्-शास्त्रम् एवास्ति दृष्टिः येषां तेषाम् इति बहु०।
12. तिमिरोद्गतिः-तिमिरस्य उद्गतिः (उद् √गम्+क्तिन् प्र०वि०ए०व०) इति ष०तत्पु०।

विशेष - रूपक अलंकार है।

पुरःपताका सर्वाविनयानाम्। उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्। आपानभूमिर्विषयमधूनाम्। सङ्गीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्। आवासदरी दोषाशीविषाणाम्।

शब्दार्थ -

सर्व (सर्वेषाम्)=सभी। अविनयानाम्=दुराचारों की (धृष्टताओं की)। पुरःपताका=अग्रवैजयन्ती (अग्रपताका)। क्रोध (क्रोधस्य)=क्रोध (के)। आवेग (आवेगाः) =सम्भ्रम (आवेग या तीव्रता)। ग्राहाणाम्=मगरों की। उत्पत्तिनिम्नगा=उद्भवनदी (उत्पन्न करने वाली नदी)। विषय (विषयाः)=भोग्य पदार्थों (रूपी)। मधूनाम्=मद्यों की (मदिराओं की)। आपानभूमिः=पानस्थली। भ्रूविकार= भ्रूविकारों (रूपी)। नाट्यानाम्=अभिनयों की। सङ्गीतशाला= रङ्गशाला। दोष (दोषाः)=(कामादि) दोषों (रूपी)। आशीविषाणाम्=सर्पों की। आवासदरी=निवासगुहा।

अनुवाद -

(यह लक्ष्मी) समस्त दुराचारों की अग्रपताका है। क्रोध के आवेग रूपी मगरों को उत्पन्न करने वाली नदी है। विषय रूपी मद्य की पानभूमि है। भ्रूसंचालन रूपी अभिनयों की रंगशाला है। दोष रूपी सर्पों के रहने की गुफा है।

टिप्पणी -

जब कोई सेना कहीं जाती हैं तो कोई अश्वारोही सैनिक अथवा रथ उसकी ध्वजा लेकर आगे-आगे चलता है उस पताका को दूर से ही देखकर सेना का अनुमान हो जाता है। उसी प्रकार किसी के पास लक्ष्मी के आते ही उसके साथ आने वाले अवगुणों और दुराचारों का अनुमान हो जाता है। लक्ष्मी के आने के साथ ही व्यक्ति का स्वभाव उग्र हो जाता है, क्रोध का आवेग उत्पन्न होता है, जिस प्रकार नदी में मगरमच्छ उत्पन्न हो जाते हैं। जिस प्रकार मदिरालयों में अत्यधिक मदिरापान से व्यक्ति अपना सर्वनाश कर लेता है उसी प्रकार इस लक्ष्मी रूपी मदिरालय में विषय-भोगों रूपी मद्यों के सेवन से उसका नाश हो जाता है। जिस प्रकार रङ्गशाला में अभिनय किया जाता है उसी प्रकार इस लक्ष्मी रूपी रङ्गशाला में क्रोध उत्तेजना आदि वृत्तियों से भ्रूविकार रूपी अभिनय होता है। लक्ष्मी कामक्रोध दोषों रूपी सर्पों की निवास-स्थली है।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

पुर इति। सर्वेषामविनयानां दुर्बुद्धीनां पुरःपताकाग्रे वैजयन्ती। उत्पत्तीति। क्रोधस्य कोपस्य यण आवेगाः सम्भ्रमास्त एव ग्राहा जलजन्तवस्तेषामुत्पत्तिनिम्नगा तटिनी। आपानेति। विषयागोचरा एव मधूनि मद्यानि तेषामापानभूमिः पानगोष्ठिकास्थलम्। सङ्गीतेति। भ्रुवां विकारा विकृतस्य एव नाट्यानि तेषां सङ्गीतशाला रङ्गशाला। आवासेति। दोषा एव दूषणान्येव आशीविषा आशीदंष्ट्रा तस्यां विषं येषां त आशीविषाः सर्पास्तेषामावासार्थं दरी गुहा।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. सर्वाविनयानाम्-सर्वे च ते अविनयाः इति क०धा०तेषाम्।
2. उत्पत्तिनिम्नगा-निम्नं गच्छति इति निम्नगा। उत्पत्त्यै निम्नगा इति च०तत्पु०।
3. क्रोधावेगग्राहाणाम्-क्रोधस्य आवेगः इति ष०तत्पु०। क्रोधावेगाः एव ग्राहाः इति। क०धा०। तेषाम्।
4. आपानभूमिः- आपानस्य भूमिः इति०च०तत्पु०। आपानम्- आपीयते सम्भूय पीयते सुरा यत्र तत् (आ √पा ल्युट् अधिकरणे)।
5. विषयमधूनाम्-विषयाः एव मधूनि इति क०धा०तेषाम्।
6. भ्रूविकारनाट्यानाम्-भ्रुवां विकाराः इति ष०तत्पु०। भ्रूविकाराः एव नाट्यानि इति कर्म०। तेषाम्।

7. दोषाशीविषाणाम्-आश्यां दंष्ट्रायां विषं येषां ते आशीविषाः सर्पाः (बहु०) दोषा एव आशीविषाः इति कर्म० तेषाम्।
8. आवासदरी-आवासाय दरी इति च०तत्पु०।

विशेष - रूपक अलंकार है।

उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्। अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्। विसर्पणभूमिर्लोकापवादविस्फोटकानाम्।

शब्दार्थ -

सत्पुरुषव्यवहाराणाम्=सज्जनों के व्यवहार को। उत्सारण-हटाने के लिए। वेत्रलता=बेंत (बाँस) की छड़ी। गुणकलहंसकानाम्=गुण रूपी कल हंसों के लिए। अकाल=असामयिक। प्रावृड्=वर्षा। लोकापवाद=लोकनिन्दा (रूपी)। (विस्फोटकानाम्=फोड़ों का विसर्पण=विस्तार (फैलने) का। भूमि=स्थान।

अनुवाद -

सज्जनों के आचरणों को दूर करने वाली बेंत की छड़ी है। गुणरूपी कलहंसों की असामयिक वर्षा-ऋतु है। लोकनिन्दा रूपी फोड़ों का विस्तार करने वाली भूमि है।

टिप्पणी -

लक्ष्मी के आने पर सदाचरण समाप्त हो जाता है और कुप्रवृत्तियां जन्म लेती हैं इसीलिए यहाँ लक्ष्मी में बेंत की छड़ी का आरोप किया गया है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में हंस मानसरोवर चले जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मी के आने पर सद्गुणों का लोप हो जाता है। 'विसर्प' एक खुजली का रोग है जिसमें सारे शरीर में दाने और फोड़े निकलते हैं और फिर फूट जाते हैं।

संस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका)

उत्सारणेति। सत्पुरुषः शिष्टास्तेषां व्यवहारा आचरणानि तेषामुत्सारणं दूरीकरणं तद्धेतुका वेत्रलता वेत्रयष्टिः। अकालेति। गुणा एव कलहंसाः कादम्बास्तेषामकालप्रावृट् समयो वर्षाकालः। प्रावृषि हंसा नश्यन्ति। इयं तु सर्वगुणानां विनाशहेतुरित्यपकर्षस्तु प्रसिद्धः। विसर्पणेति। लोकेषु येऽपवादा विरोधोक्तस्त एव विस्फोटकाः शिलीन्द्राणि तेषां विसर्पणभूमिर्विस्तरणस्थलम्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उत्सारवेत्रलता-वेत्रस्य लता वेत्रलता इति ष०तत्पु०। उत्सारणाय वेत्रलता इति च०तत्पु०।

2. सत्पुरुषव्यवहाराणाम्-सन्तश्च ते पुरुषाः सत्पुरुषाः इति क॰धा॰। सत्पुरुषाणाम् व्यवहाराः इति ष॰तत्पु॰, तेषाम्।
3. अकालप्रावृट्- अकाले प्रावृट् इति स॰तत्पु॰।
4. गुणकलहंसकानाम्- गुणा एव कलहंसाः गुणकलहंसाः इति क॰धा॰। हंसा एव हंसकाः (स्वार्थे कन् प्रत्ययः) तेषाम्।
5. लोकापवादविस्फोटकानाम्- लोकेषु अपवादाः लोकापवादाः इति स॰तत्पु॰। ते एव विस्फोटकाः लोकापवादविस्फोटकाः इति क॰धा॰तेषाम्।

विशेष - रूपक अलंकार है।

प्रस्तावना कपटनाटकस्य। कदलिका कामकरिणः। वध्यशाला साधुभावस्य। राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य।

शब्दार्थ -

कपट=छल (रूपी)। नाटकस्य=अभिनय की। प्रस्तावना=आमुख (भूमिका)। कामकरिणः=काम (कन्दर्प) रूपी हाथी का। कदलिका=केले का वन। साधुभावस्य=सज्जनता का। वध्यशाला=हत्यागृह। धर्मेन्दुमण्डलस्य=धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए। राहुजिह्वा=राहु की जीभ।

अनुवाद -

(यह लक्ष्मी) छल रूपी नाटक की भूमिका है। कामदेव रूपी हाथी का कदली-वन है। सुजनता की वध्यशाला है। धर्मरूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिह्वा है।

टिप्पणी -

संस्कृत साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद कहे गये हैं- दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य अथवा रूपक के दस भेद बताये गये हैं जिनमें नाटक सर्वप्रमुख हैं-

"प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रसपरिग्रहात्।
सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते।।" (द॰रू॰- 3/1)

अर्थात् प्रथमतः नाटक के विषय में कहा जाता है क्योंकि नाटक अन्य सभी रूपकों की प्रकृति है, इसमें सभी रसों का आश्रय लिया जाता है, इसमें रूपक के सभी लक्षण होते हैं। नाटक का वास्तविक प्रारम्भ नान्दी के अनन्तर 'प्रस्तावना' से होता है- "जहाँ सूत्रधार (=स्थापक) विचित्र उक्ति के द्वारा नटी, पारिपार्श्विक (मार्ष) या विदूषक को प्रस्तुत अर्थ का आक्षेप करने वाला अपना कार्य बतलाता है वह आमुख या प्रस्तावना कहलाती है-

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्।
प्रस्तावना वा। (द॰रू॰- 3/7-8)

उपर्युक्त सन्दर्भ में लक्ष्मी में छलरूपी नाटक की प्रस्तावना का आरोप किया गया है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार-प्रस्तावना से नाटक का शुभारम्भ होता है उसी प्रकार छल-प्रपंच रूपी नाटक का निर्माण लक्ष्मी के आगमन से होता है।

जैसे हाथी कदली-वन में स्वेच्छापूर्वक विहार करता है वैसे ही लक्ष्मी के रहने पर काम का विहार मनमाना हो जाता है। जिस प्रकार मृत्यु-दण्ड प्राप्त अपराधियों का वध वधशाला में किया जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी के संपर्क में मनुष्य की कल्याण-भावना का विनाश हो जाता है। जैसे -राहु चन्द्रमा को ग्रस लेता है वैसे ही लक्ष्मी धर्म को विलीन कर देती है।

प्रसिद्ध समुद्र मन्थन की कथा के अनुसार जब विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर अमृत देवताओं को देना शुरू किया तो 'राहु' नामक दैत्य ने वेश बदलकर देवताओं के मध्य बैठ अमृत पी लिया। पता लगते ही विष्णु ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया। अमृत पी लेने के कारण उसके सिर और धड़ दोनों अमर हो गये और 'राहु'- 'केतु' कहलाये। (स्कन्द॰ 1.12)।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

प्रस्तावनेति। कपटनाटकस्य कैतवनृत्यस्य प्रस्तावना प्रारम्भः सूत्रधारादिप्रवेशः। कदलिकेति। कामकरिणो मदनगजस्य कदलिका रम्भा। वध्येति। साधुभावस्य शोभनाध्यवसायस्य वध्यशाला सूनास्थानम्। राहुजिह्वेति। धर्मः सदाचारः निर्मलसाम्यात्स एवेन्दुमण्डलं चन्द्रबिम्बं तस्य राहुजिह्वा सैंहिकेयरसना।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. प्रस्तावना- प्र √स्तु+णिच्+युच्+टाप्।
2. कपटनाटकस्य-कपटमेव नाटकं कपटनाटकम् इति क॰धा॰ तस्य।
3. कामकरिणः- कामः एव करी इति क॰धा॰, तस्य।
4. वध्यशाला- हननस्य शाला वध्यशाला इति ष॰तत्पु॰। √हन्+यत् (हनो यत् वधश्च)।
5. साधुभावस्य- साधोः भावः इति ष॰तत्पु॰तस्य।

6. राहुजिह्वा-राहोः जिह्वा इति ष०तत्पु०।
7. धर्मेन्दुमण्डलस्य- इन्दोः मण्डलम् इति इन्दुमण्डलम् इति ष०तत्पु०। धर्म एव इन्दुमण्डलम् इति क०धा०। तस्य।

विशेष - रूपक अलंकार है।

नहि तं पश्यामि। यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढो यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति। पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति। उत्कीर्णापि विप्रलभते। श्रुताप्याभिसन्धत्ते। चिन्तितापि वञ्चयति।

शब्दार्थ -

हि=निश्चित रूप से। तं=उसको (मनुष्य को)। न=नहीं। पश्यामि=देखता हूँ। यो हि=जो (मनुष्य)। अनया=इस। अपरिचितया=अपरिचिता (परस्पर जान-पहचान से रहित) के द्वारा (लक्ष्मी के द्वारा)। निर्भरम्=बहुत अधिक (दृढ़)। न उपगूढो=आलिङ्गित न किया गया। वा=अथवा। यो=जो। न=नहीं। विप्रलब्धः=ठगा गया हो। नियतम्=निश्चय ही। इयम्=यह (लक्ष्मी)। आलेख्यगतापि=चित्रलिखित होती हुयी भी। चलति=चलती (दूसरे के पास चली जाती है)। पुस्तमय्यपि=(मिट्टी, लकड़ी, कपड़े आदि की बनी हुयी) पुतली होते हुए भी। इन्द्रजालम्=जादू को। आचरति=प्रदर्शित करती है। उत्कीर्णा=(पत्थर आदि पर) खुदी हुयी। अपि=भी। विप्रलभते=ठग लेती है। श्रुतापि=सुनी जाती हुयी। अभिसंधत्ते=छल करती है। चिन्तितापि=(केवल) सोची जाती हुयी भी। वञ्चयति=धोखा देती है।

अनुवाद -

निश्चय ही उस (व्यक्ति) को नहीं देखता हूँ। जो इस अपरिचित (लक्ष्मी) के द्वारा कसकर आलिङ्गित न हुआ हो अथवा (बाद में) ठगा न गया हो। चित्रांकित होने पर होने पर भी निस्सन्देह चली जाती है। (कपड़े, मिट्टी, लकड़ी आदि की) पुतली होते हुए भी जादू करती है (अर्थात् क्षण में अदृश्य हो जाती है)। खुदी हुयी भी (पत्थर आदि पर) होने पर भी ठग लेती है। (केवल) सुनी जाती हुयी भी छल करती है। (केवल) सोची जाती हुयी भी धोखा देती है।

टिप्पणी -

इस अनुच्छेद में लक्ष्मी की चञ्चलता का विभिन्न रूपों में वर्णन किया गया है। लक्ष्मी का कोई स्थायी निवास नहीं है जिस व्यक्ति के पास अधिक मात्रा में अधिक समय तक रहती है उसी को पल भर में त्याग देती है। लक्ष्मी के

विषय में सुनने और सोचने मात्र से भी वह व्यक्ति को विनाश की ओर ले जाती है।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

नहीति। हि निश्चितम्। तं पुरुषं न पश्यामि नावलोकयामि यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धात् यः पुमानपरिचितयासन्निहितया निर्भरमतिशयं नोपगूढो नाश्लिष्टः। यो वा न विप्रलब्धो न च विप्रतारितः। नियतं निश्चितम्। इयं लक्ष्मीरालेख्यगता चित्रलिखितापि चलति न स्थिरा भवति। अन्येषां चित्तानि चालयतीति वा। पुस्तकेति। पुस्तकमय्यपि ज्ञानमय्यपीन्द्रजालवज्जालमाचरति। उत्कीर्णेति। उत्कीर्णाप्युत्कीरितापि विप्रलभते विप्रतारणां करोति। श्रुताप्याकर्णिताप्यभिसन्धत्ते संशयं करोति। चिन्तितापि वञ्चयति वञ्चनां करोति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अपरिचितया न परिचिता (नञ्) तया।
2. उपगूढः- उप √गुह् संवरणे+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
3. विप्रलब्धः- वि+प्र √लभ्+क्त् प्र॰वि॰ए॰व॰।
4. आलेख्यगता-आलेख्यं गता इति द्वि॰तत्पु॰ (आ √लिख्+यत् द्वि॰ए॰व॰)
5. पुस्तमयी- पुस्त+मयट्+ङीप् प्र॰वि॰ए॰व॰।

   टिप्पणी- 'पुस्त' शब्द पुत्तलिका का वाचक है। यह पुत्तलिका मिट्टी, लकड़ी, वस्त्र अथवा चमड़े की बनी हुयी होती है-

   'मृदा वा दारुणा वाऽथ वस्त्रेणाथ चर्मणा।

   लोहरत्नैः कृतम्वापि पुस्तमित्यभिधीयते॥ अमर॰॥"
6. उत्कीर्णा- उत् √कृ विक्षेपे+क्त+टाप् प्र॰वि॰ए॰व॰।
7. विप्रलभते- वि॰प्र॰ √लभ् लट् प्र॰पु॰ए॰व॰।
8. श्रुता- √श्रु+क्त+टाप् प्र॰वि॰ए॰व॰।
9. अभिसन्धत्ते- अभि+सम् √धा लट् ल॰ प्र॰पु॰ए॰व॰।
10. चिन्तिता- √चिन्त् स्मृत्यां+क्त+टाप् प्र॰वि॰ए॰व॰।
11. वञ्चयति- √वञ्च् प्रलम्भने (चुरादिगण में परिगणित आत्मनेपदी है अतः वञ्चयते रूप होता है) लट् ल॰ प्र॰पु॰ए॰व॰। णिजन्त होने पर उभयपदी।

विशेष - विरोधाभास अलंकार है।

एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वाविनयाधिष्ठानताञ्च गच्छन्ति।

शब्दार्थ -

एवंविधयापि=इस प्रकार की (पहले कहे गये लक्षणों से युक्त) होते हुए भी। दुराचारया=दुष्ट आचरण वाली। अनया=इस (लक्ष्मी) के द्वारा। कथमपि=किसी प्रकार। दैववशेन=भाग्यवश। परिगृहीता=पकड़े गये (स्वीकार किये गये)। राजानः=राजा लोग। विक्लवा=व्याकुल। भवन्ति=हो जाते हैं। च=और। सर्व=सभी। अविनया (नाम्)=धृष्टताओं के अधिष्ठानताम्=आधार को (निवास को)। गच्छन्ति=प्राप्त कर लेते हैं।

अनुवाद -

इस प्रकार की दुराचारिणी लक्ष्मी से भाग्यवश किसी प्रकार अपनाये हुए राजा लोग व्याकुल रहते हैं और समस्त दुराचारों के आधार बन जाते हैं।

संस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका)

एवंविधयापि पूर्वोक्तलक्षणलक्षितयाप्यनया श्रिया दुराचारया दुष्टाश्चरणया कथमपि महता कष्टेन दैववशेन भाग्यवशेन परिगृहीताः स्वीकृता राजानो विक्लवा विह्वला भवन्ति। सर्वेषामविनयानां दुर्बुद्धीनामधिष्ठानतामधिकरणतां च गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति। चकारः समुच्चयार्थः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. एवंविधया-एवं विधः प्रकारः यस्याः सा इति बहु० तया।
2. दुराचारया- दुष्टः आचारः यस्याः सा इति बहु० तया।
3. परिगृहीताः- परि √ग्रह्+क्त प्र०वि०ब०व०।
4. सर्वाविनयाधिष्ठानताम्- सर्वे अविनयाः सर्वाविनयाः इति क०धा। सर्वाविनयानाम् अधिष्ठानता (अधि √स्था+ल्युट् √तल्) इति ष०तत्पु० ताम्।

विशेष - समासोक्ति अलंकार है।

तथाहि-अभिषेकसमय एवैषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापनीयते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापवार्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणा, जयशब्दकलकलैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।

शब्दार्थ -

तथाहि=जैसे कि। अभिषेकसमय एव=राज्याभिषेक के समय ही। एषां=इनकी (राजाओं की)। मङ्गलकलशजलैः=कल्याण-घटों के जलों से। दाक्षिण्यम्=उदारता। इव=मानो। प्रक्षाल्यते=धो दी जाती है। अग्निकार्यधूमेन=यज्ञादि के धुएं से। हृदयं=चित्त। मलिनीक्रियते इव=मानो दूषित (मलिन) कर दिया जाता है। पुरोहित (पुरोहितस्य)=पुरोहित की। कुशाग्र (कुशाग्राणि)=दर्भों (कुशाओं) रूपी। सम्मार्जनीभिः=झाडुओं से। क्षान्तिः=क्षमा। अपनीयते इव=मानो दूर कर दी जाती है। उष्णीषपट्टबन्धेन=रेशमी वस्त्र की पगड़ी बाँधने से। जरागमनस्मरणम्=वृद्धावस्था के आने की स्मृति। आच्छाद्यते इव=मानो ढक दी जाती है। आतपत्रमण्डलेन=छत्र-मंडल (तने हुए छाते) से। परलोकदर्शनम्=जन्मान्तर के प्रति देखना। अपवार्यते इव=मानो रोक दिया जाता है। सत्यवादिता=सत्य बोलना। चामरपवनैः=चँवर की हवा से। अपह्रियते इव=मानो उड़ा दिया जाता है। गुणा=गुण। वेत्रदण्डैः=बेंत की छड़ियों से। उत्सार्यन्ते इव=मानो दूर कर दिये जाते हैं। साधुवादाः=शुभ वचन। जयशब्दकलकलैः=जयकार की ध्वनियों से। तिरस्क्रियन्ते इव=तिरस्कृत कर दिये जाते हैं (दबा दिये जाते हैं)। यशः=कीर्ति। ध्वज पटपल्लवैः= पताका के वस्त्र के छोरों से। परामृश्यते इव=मानो पोंछ दी जाती है।

अनुवाद -

क्योंकि राज्याभिषेक के समय ही इन (राजाओं) की उदारता मानो मांगलिक कलशों के जल से धो दी जाती है। हृदय मानो हवन के धुएं से मलिन कर दिया जाता है। क्षमा मानो पुरोहित के कुशाग्र रूपी झाडुओं से बुहार दी जाती है। वृद्धावस्था के आने का स्मरण रेशमी वस्त्र की पगड़ी से मानो ढक दिया जाता है। जन्मान्तर के प्रति देखना मानो छत्र-मण्डल से रोक दिया जाता है। सत्य बोलना चँवर की हवा से मानो उड़ा दिया जाता है। गुण मानो बेंत की छड़ियों से दूर कर दिये जाते हैं। शुभ वचन (साधुवाद) मानो जयकार की ध्वनियों से दबा दिये जाते हैं। यश मानो पताका के वस्त्र के छोरों से पोंछ दिया जाता है।

टिप्पणी -

राज्याभिषेक के समय जो सामग्री प्रयुक्त होती है। उनमें ऐसी कल्पना की गयी है मानो वही सब क्रियायें और वस्तुएं राजाओं के गुणों को समाप्त कर देती हैं। तात्पर्य यह है कि राज्यलक्ष्मी के आते ही उदारता आदि गुणों को त्यागकर राजा लोग अभिमान आदि अवगुणों में प्रवृत्त हो जाते हैं।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

तदेव दर्शयति-तथाहीति। अभिषेकसमये राज्याभिषेकक्षणे एवैतेषां राज्ञां मङ्गलकलशजलैरिव कल्याण कुम्भोभिरिव दाक्षिण्यमनुकूलता प्रक्षाल्ये धावनविषयीक्रियते। अग्नीति। अभिषेकानन्तरं होमस्य सद्भावादग्नीत्युक्तम्। अग्निकार्यं होमादि तस्य धूमेन हृदयं स्वान्तं मलिनीक्रियते। राज्ञमिति शेषः पुरोहितेति। पुरोहितः पुरोधास्तस्य कुशाग्राणि दर्भाग्राण्येव सम्मार्जन्यो बहुकार्यस्ताभिरिव क्षान्तिः क्षमाह्रियते दूरीक्रियते। उष्णीषेति। उष्णीषो मूर्धवेष्टनं स एव पट्टबन्धस्तेनेव जरा विस्रसा तस्याः आगमनमागमस्तस्य स्मरणं स्मृतिराच्छाद्यत आव्रियते। आतपत्रेति। आतपत्रं छत्रं तस्य मण्डलेन निस्तलेन परलोकस्य भवान्तरस्य दर्शनमवलोकनमपसार्यते दूरीक्रियते। चामरेति। चामरं बालव्यजनं तस्य पवनैर्वीजनैरिव सत्यमवितथं वदतीत्येवंशीलः सत्यवादी तस्य भावस्तत्ता सा अपह्रियये ऽपहरणविषयीक्रियते। वेत्रेति। वेत्रदण्डैर्वेतसयष्टिभिरिव गुणाः शौर्यादय उत्सार्यन्ते दूरीक्रियन्ते। जयेति। जयशब्दस्य ये कलकलरवा कोलाहलशब्दास्तैरिव साधुवादाः ख्यातयस्तिरस्क्रियन्ते न्यक्क्रियन्ते। ध्वजेति। ध्वजा वैजयन्त्यस्तेषां पटा वस्त्रापि तेषां पल्लवैः प्रान्तैरिव यशः श्लोकः परामृश्यते परामर्शो लोपः स क्रियते।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अभिषेकसमये- अभिषेकस्य (अभि √सिच्+घञ्=अभिषेकः) समयः इति अभिषेकसमयः इति ष॰तत्पु॰ तस्मिन्।
2. मङ्गलकलशजलैः- मङ्गलाय कलशाः इति च॰तत्पु॰। तेषां जलै॰ इति ष॰तत्पु॰।
3. प्रक्षाल्यते- प्र √क्षल् शौचकर्मणि कर्म वा॰ लट् ल॰ प्र॰पु॰ए॰व॰।
4. दाक्षिण्यम्- दक्षिणस्य भावः (दक्षिण+ष्यञ्) इति ष॰तत्पु॰।
5. अग्निकार्यधूमेन-अग्नेः कार्यमिति ष॰तत्पु॰। तस्य धूमेन इति ष॰तत्पु॰।
6. मलिनीक्रियते- मलिन शब्द+च्वि+√कृ कर्मवा॰ लट् ल॰ प्र॰पु॰ए॰व॰।
7. पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिः- कुशानाम् अग्राः इति ष॰तत्पु॰। कुशाग्रम् एव सम्मार्जनी (सम् √मृज्+ल्युट्ङीप्) इति कुशाग्रसम्मार्जनी इति क॰धा॰। पुरोहितेन कृताभिः कुशाग्रसम्मार्जनीभिः इति तृ॰तत्पु॰।
8. अपनीयते- अप √नी कर्मवा॰ लट् ल॰ प्र॰पु॰ए॰व॰।
9. क्षान्तिः - √क्षम्+क्तिन् प्र॰वि॰ए॰व॰।
10. उष्णीषपट्टबन्धेन- उष्णीषस्य पट्टः इति ष॰तत्पु॰। तस्य बन्धेन इति।

ष०तत्पु०।

11. जरागमनस्मरणम्- जरायाः आगमनम् इति ष०तत्पु०। तस्य स्मरणम् इति ष०तत्पु०।

12. आच्छाद्यते- आ √छद् आच्छादने कर्मवा० लट् ल० प्र०पु०ए०व०।

13. आतपत्रमण्डलेन- आतपात् त्रायते इति आतपत्रम् आतपत्रस्य मण्डलेन इति ष०तत्पु०।

14. अपवार्यते- अप √वृ वरणे कर्म वा० लट् ल० प्र०पु०ए०व०।

15. परलोकदर्शनम्- परश्चासौ लोकः परलोकः (क०धा०) परलोकस्य दर्शनम् इति ष०तत्पु०।

16. चामरपवनैः- चामराणां पवनैः इति ष०तत्पु०।

17. अपह्रियते- अप √हृ कर्मवा० लट् ल० प्र०पु०ए०व०।

18. सत्यवादिता- सत्यतश्चासौ वादः सत्यवादः (क०धा०) सत्यवादः अस्य अस्तीति सत्यवादी, तस्य भावः।

19. जयशब्दकलकलैः- जय इव शब्दः जयशब्दः इति क०धा०स०। जयशब्दस्य कलकलैः इति। ष०तत्पु०।

20. तिरस्क्रियन्ते-तिरस् अव्यय √डुकृञ् करणे कर्मवा० लट् ल० प्र०पु०ए०व०।

21. ध्वजपटपल्लवैः- ध्वजस्य पटः इति ष०तत्पु०। तस्य पल्लवैः इति ष०तत्पु०।

22. परामृश्यते-परा √मृश् आमर्शने कर्मवा० लट् ल० प्र०पु०ए०व०।

विशेष - उत्प्रेक्षा अलंकार है।

तथाहि-केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचपलाभि, खद्योतोन्मेषमुहूर्त-मनोहराभिः मनस्विजनगर्हिताभिः सम्पद्भिः प्रलोभ्यमानाः, धनलवलाभावलेपविस्मृत- जन्मानोऽनेकदोषो पचितेन दुष्टासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः, विविधविषयग्रासलालसैः पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसंख्यै-रिवेन्द्रियैरायास्यमानाः, प्रकृतिचञ्चलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि सहस्रतामिवोपगतेन मनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति।

शब्दार्थ -

तथाहि=जैसे कि। केचित्=कुछ लोग (राजा)। श्रम-वश-शिथिल-शकुनि-गल-पुट- चपलाभिः-श्रमवश=परिश्रम के कारण। शिथिल=काँपती हुयी। शकुनि=पक्षी की। गलपुट=गर्दन (के समान)। चपलाभिः=चञ्चल। खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिः-खद्योत=जुगनू (के)। उन्मेष= चमकने (के समान)।

मुहूर्त=क्षणिक (रूप से)। मनोहराभि:=मन को हरने वाली। मनस्विजन=ज्ञानियों के द्वारा। गर्हिताभि:=निन्दित। संपद्भि:=संपत्तियों के द्वारा। प्रलोभ्यमाना= ललचाये जाते हुए। धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन- धनलव=थोड़े से धन (के)। लाभ=प्राप्ति (के)। अवलेप=अभिमान। (अपने) जन्मानो=जन्म को। विस्मृत=भूले हुए। अनेक=बहुत से। दोषोपचितेन=दोषों से बढ़े हुए। दुष्टासृजेव दुष्ट=दूषित। असृजा=रक्त के। इव=समान। रागावेशेन-राग=आसक्ति की। आवेशेन=अधिकता से। बाध्यमाना:=पीडित किये जाते हुए। विविधविषयग्रासलालसै:=विविध=अनेक प्रकार के। विषय=विषयों के। ग्रास=उपभोग की। लालसै:=लालसा रखने वाली। पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमाना: पञ्चभि: (संख्या में) पांच होते हुए। अपि=भी। अनेकसहस्रसंख्यैरिव=मानो कई हजार की संख्या वाली। इन्द्रियै:=इन्द्रियों के द्वारा। आयास्यमाना:=क्लेश पहुँचाये जाते हुए। प्रकृति=स्वभाव से। चञ्चलतया=चञ्चल होने के कारण। लब्धप्रसरेण=अवकाश मिलने से। एकेनापि=एक होते हुए भी। इव=मानो। सहस्रताम्=हजारों की संख्या को। उपगतेन=प्राप्त हुए। मनसा=मन से। आकुलीक्रियमाणा=व्याकुल किये जाते हुए। विह्वलताम्=उद्विग्नता को। उपयान्ति=प्राप्त करते हैं।

अनुवाद -

परिश्रम के कारण (मोरों अथवा) अन्य पक्षियों की काँपती हुयी गर्दन के समान चञ्चल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर के लिए मन को हरने वाली, मनस्वी लोगों के द्वारा निन्दित सम्पत्तियों के द्वारा ललचाये जाते हुए, थोड़े से धन को पा जाने के गर्व से जन्म को भूल जाने वाले, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, राग के आवेश से बाध्य किये गये, अनेक प्रकार के विषय रूपी ग्रासों के लोभी, पाँच होते हुए भी अनेक सहस्रों की संख्या में प्रतीत होने वाली इन्द्रियों के द्वारा दु:खी किये गये, स्वभाव से चञ्चल होने के कारण प्रसार को प्राप्त हुए एक होते हुए भी मानो हजारों की संख्या को प्राप्त हुए मन के द्वारा आकुलित हुए (कुछ राजा लोग) व्याकुलता को प्राप्त करते हैं।

टिप्पणी -

प्रस्तुत अनुच्छेद में लक्ष्मी की चञ्चलता को कुछ उपमाओं के माध्यम से दर्शाया गया है- जिस प्रकार बहुत देर तक उड़ने के परिश्रम से थके हुए, हाँफते हुए पक्षियों की गर्दन हिलती रहती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी स्थिर रुप से नहीं रहती और जिस प्रकार जुगनू की चमक क्षण भर के लिए आकृष्ट करती

है। जब तक ध्यान उसकी चमक पर जाता है तब तक वह अदृश्य हो जाती है उसी प्रकार लक्ष्मी के आने से उत्पन्न हुयी चकाचौंध क्षणिक रूप से व्यक्ति के मन को हरती है। यह लक्ष्मी अल्पमात्रा में भी किसी के पास आकर उसकी बुद्धि को ऐसा भ्रष्ट कर देती है कि वह अपने जन्म अर्थात् कुल परम्परा के विरुद्ध आचरण करने लगता है।

जिस प्रकार वात, पित्त और कफ के दोषों से विकृत हुआ रक्त मनुष्य को कष्ट पहुंचाता है उसी प्रकार विषय-भोगों में आसक्ति के बढ़ने से व्यक्ति व्याकुल हो जाता है। आसक्ति इतनी बढ़ जाती है कि ऐसा लगता है मानो श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका- ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां पाँच न होकर हजारों हो गयी हों। इसी प्रकार चारों ओर विषय भोगों की ओर चलायमान रहती हैं। मन भी मानो एक न होकर हजार मन हो गये हों। इन सब कारणों से पाँच इन्द्रियां और एक मन भी मानो हजारों की संख्या में उपस्थित होकर उन राजाओं को व्याकुल कर देते हैं।

संस्कृत-टीका (भा०च०सि०च० टीका)

तदेव दर्शयति-तथाहीति। केचिन्मनुष्याः। श्रमेति। श्रमवशेन प्रयासाधिक्येन शिथिल-श्लथोऽदृढः शकुनेर्मयूरस्य अन्यस्य वा पक्षिविशेषस्य यो गलः कण्ठस्तस्य यत्पुटं तद्वच्चपलाभिः। मयूरस्य कण्ठः श्रमवशेन चात्यन्तं चपलः स्यादिति तदुपमानम्। खद्योत इति। खद्योतो ज्योतिरिङ्गणस्तस्य य उन्मेषोऽवभासस्तद्वन्मुहूर्तं मनोहराभिश्चित्तहारिणीभिः। मनस्वीति। मनस्विजनाः पण्डितलोकास्तैर्गर्हिताभिनिन्दिताभिरेवं विधाभिः सम्पद्भिः समृद्धिभिः प्रलोभ्यमाना लोभं प्राप्यमाणाः। धनेति। धनस्य द्रव्यस्य यो लवो लेशस्तस्य लाभः प्राप्तिस्तस्माद्योऽवलेपोऽहङ्कारस्तेन विस्मृतं विस्मरणं प्राप्तं जन्म येषां ते तथानैकेदोषा दूषणानि तैरुपचितेन व्याप्तेन। रागावेशेनेति। राग इच्छारुण्यं च तेषामावेशस्तन्मयीभावस्तेन बाध्यमानाः पीड्यमानाः केनेव। दोषेति। दोषं दुष्टं यदसृग्रक्तं तेनेव। तत्रापि रागो भवत्येवेति साम्यम्। विविधेति। विविधा येऽनेके विषया गोचरास्त एव ग्रासा गुडेरकास्तत्र लालसैर्लम्पटैः। पञ्चभिरिति। पञ्चभिरपि प्राणप्रमितसङ्ख्यैरपि चक्षुरादिभिरपि शतसहस्रतां लक्षतामुपगतेन अनेकसहस्रसङ्ख्यैरिन्द्रियैः करणैरायास्यमानाः। परिक्लिश्यमानाः। प्रकृतीति। प्रकृत्या स्वभावेन चञ्चलश्चपलस्तस्य भावस्तत्ता तया लब्धः प्रसरोऽवकाशो येनैवम्भूतेनैकेन मनसा चित्तेनाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुल्पिञ्जलतामुपयान्ति गच्छन्ति।

[व्या]करणात्मक विशेषतायें -

1. केचित्-किम् शब्द पुं॰प्र॰वि॰ब॰व॰+चित्।
2. श्रमवशशिथिल शकुनिगलपुटचपलाभिः- श्रमवशेन शिथिलः इति तृ॰तत्पु॰ शकुनीनां गलपुटः इति तृ॰तत्पु॰। श्रमवशशिथिलः यः शकुनिगलपुटः इति श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटः तद्वत् चपलाः ताभिः इति क॰धा॰ सम्पद्भिः का विशेषण।
3. खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिः- खद्योतानाम् उन्मेषः इति ष॰तत्पु॰। मूहूर्ताय मनोहराः इति च॰तत्पु॰। खद्योतोन्मेषवन्मुहूर्तमनोहराभिः इति कर्म॰धा॰। सम्पद्भिः का विशेषण।
4. मनस्विजनगर्हिताभिः- मनस्विनश्च ते जनाः मनस्विजनाः इति क॰धा॰। मनस्विजनैः गर्हिताः मनस्विजनगर्हिताः इति तृ॰तत्पु॰। ताभिः। संपद्भिः का विशेषण।
5. धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः- धनस्य लवलाभः इति ष॰तत्पु॰। तस्य अवलेपः इति ष॰तत्पु॰। तेन विस्मृतं जन्म येषां ते इति बहु॰। केचित् पद का विशेषण।
6. अनेकदोषोपचितेन-अनेके च ते दोषाः अनेकदोषाः इति क॰धा॰। तैः उपचितेन (उप √चि+क्त तृ॰वि॰ए॰व॰) इति तृ॰ तत्पु॰।
7. प्रलोभ्यमानाः- प्र √लुभ् गाहर्ये विमोहने+कर्मणि यक्+ शानच् पु॰प्र॰वि॰ब॰व॰। केचित् पद का विशेषण।
8. दुष्टासृजेव- दोषश्च असौ असृक् च इति कर्म॰। तेन।
9. रागावेशेन-रागस्य आवेशः (आ √विश्+घञ्) रागावेशः इति ष॰तत्पु॰, तेन।
10. विविधविषयग्रासलालसैः- विविधाः विषयाः इति कर्म॰। विविध विषयानां ग्रासः इति ष॰तत्पु॰। तेषां लालसा इति ष॰तत्पु॰। तैः।
11. आयास्यमानाः- आ √यस् प्रयत्ने+णिच्+शानच् पु॰प्र॰वि॰ब॰व॰। केचित् पद का विशेषण।
12. प्रकृतिचञ्चलतया- प्रकृत्या चञ्चलः इति तृ॰तत्पु॰। तस्य भावः प्रकृतिचञ्चलता, तया।
13. लब्धप्रसरेण- लब्धः प्रसरः येन सः इति बहु॰, तेन। मनसा पद का विशेषण।

14. उपगतेन- उप √गम्+क्त तृ॰वि॰ए॰व॰। मनसा पद का विशेषण।

15. आकुलीक्रियमाणा:- आकुल+च्वि √कृ+यक्+शानच् प्र॰वि॰ब॰व॰। केचित् पद का विशेषण।

16. उपयन्ति- उप √या लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।

विशेष -

श्रमवश..... गर्हिताभि: सम्पद्भि: में लुप्तोपमा। धनलवलाभ..... बाध्यमाना: में पूर्णोपमा। विविधविषय.... आकुलीक्रियमाणा: में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

ग्रहैरिव गृह्यन्ते। भूतैरिवाभिभूयन्ते। मन्त्रैरिवावेश्यन्ते। सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते। वायुनेवविडम्ब्यन्ते। पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते।

शब्दार्थ -

इव=मानो। ग्रहै:=(राहु आदि) ग्रहों के द्वारा। गृह्यन्ते=पकड़ लिये जाते हैं। इव=मानो। भूतै:=(देवयोनि विशेष) भूतों के द्वारा। अभिभूयन्ते=आक्रान्त कर दिये जाते हैं। मन्त्रै:=(अभिचार मन्त्र अथवा तान्त्रिक मंत्र) मन्त्रों के द्वारा। आवेश्यन्ते=वश में कर लिये जाते हैं। सत्त्वै:=हिंसक जन्तुओं के द्वारा। अवष्टभ्यन्ते=बलपूर्वक पकड़ लिये जाते हैं। वायुना=वायु द्वारा। विडम्ब्यन्ते=इधर-उधर फेंक दिये जाते हैं। पिशाचै:=राक्षसों के द्वारा। ग्रस्यन्ते=ग्रस लिए जाते हैं।

अनुवाद-

(ऐसे राजा लोग) ग्रहों के द्वारा मानो पकड़ लिए जाते हैं। भूतों के द्वारा मानो दबोच लिए जाते हैं। मन्त्रों से मानो वश में कर लिए जाते हैं। हिंसक प्राणियों से मानो बलपूर्वक पकड़ लिए जाते हैं। वायु से मानो विक्षिप्त कर दिये जाते हैं। पिशाचों से मानो ग्रस लिए जाते हैं।

टिप्पणी -

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नव ग्रह हैं। 'भूत' शब्द के अनेक अर्थ हैं, परन्तु प्रसंग के कारण वह यहाँ देवयोनिविशेष का वाचक है। मन्त्रों का अभिप्राय अभिचार अथवा तान्त्रिक मन्त्रों से है।

संस्कृत-टीका- (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

ग्रहैरिति। ग्रहै: शनैश्चरादिभिरिव गृह्न्ते ग्रहणविषयीक्रियन्ते। भूतै: पिशाचैरिवाभिभूयन्ते मन्त्रैरिति। मन्त्रा देवाधिष्ठातृकास्तैरिवावेश्यन्ते। मन्त्रेणान्यत्रावेश: क्रियते। यथा भूतमन्यत्र प्रवेश्यते। सत्त्वैरिव दुष्ट प्राणिभिरिवावष्टभ्यन्ते हठेन गृह्यन्ते। वायुनेव पवनेनेव विडम्ब्यन्त इतस्ततो

विक्षिप्यन्ते। पिशाचैरिव राक्षसैरिव ग्रस्यन्ते भक्ष्यन्ते।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. गृह्यन्ते- √ग्रह् ग्रहणे+कर्मणि यक् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।
2. अभिभूयन्ते- अभि+√भू+यक् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।
3. आवेश्यन्ते- आ √विश्+यक् लट्॰ ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।
4. अवष्टभ्यन्ते- अव √स्तम्भ् रोधने धारणे च+यक् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।
5. विडम्ब्यन्ते- वि √डम्ब् क्षेमे+यक् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।
6. ग्रस्यन्ते- √ग्रस् अदने+यक् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।

विशेष - उत्प्रेक्षा अलंकार है।

मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते। धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते। गाढप्रहाराहता इवाङ्गानि न धारयन्ति।

शब्दार्थ -

मदनशरैः=कामदेव के बाणों से। इव=के समान। मुखभङ्गसहस्राणि=हजारों मुख भंगिमाओं को। कुर्वते=करते हैं। मर्माहताः=मर्माहत हुए। धनोष्मणा=धन की गर्मी से। पच्यमानाइव=पकाये जाते हुए से। विचेष्टन्ते=विभिन्न प्रकार की चेष्टाओं को करते हैं। गाढप्रहाराहता=तीव्र प्रहार से घायल हुए। अङ्गानि=(शरीर के) अवयवों को। न धारयन्ति=(स्वयं) धारण नहीं करते हैं।

अनुवाद -

कामदेव के बाणों से मर्माहत होकर मानो हजारों प्रकार की मुख-भंगिमायें करते हैं (अर्थात् मुँह बनाते हैं)। धन की गर्मी से पकते हुए से अनेक चेष्टायें करते हैं। कठोर प्रहार से आहत हुए के समान अंगों का वहन (स्वयं) नहीं कर पाते।

संस्कृत-टीका- (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

मदनेति। मदनशरैः कामबाणैर्मर्मस्थला आहतास्ताडिता इव मुखभङ्गसहस्राण्यानन- विकृतिसहस्राणि कुर्वते घटयन्ति। धनेति। धनस्य द्रव्यस्योष्मा तापस्तेन पच्यमानाः पाकविषयीक्रियमाणा इव विचेष्टन्ते। विविधां चेष्टां कुर्वन्तीत्यर्थः। गाढेति। गाढस्तीव्रो यः प्रहारो लगुडादिना कुल्लण्टनं तेनाहता इवाङ्गानि हस्तपादादीनि न धारयन्ति न धर्तुं शक्नुवन्तीत्यर्थः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. मदनशरैः- मदनस्य शरैः इति ष०तत्पु०।
2. मर्माहताः-मर्मणि आहताः (आ √हन्+क्त) स०तत्पु०।
3. मुखभङ्गसहस्राणि-मुखस्य भङ्गाः इति ष०तत्पु०। तेषां सहस्राणि इति ष०तत्पु०।
4. कुर्वते- √कृ लट् ल० प्र०पु०ब०व०। (आत्मनेपदी)
5. धनोष्मणा- धनस्य ऊष्मा इति ष०तत्पु०, तेन।
6. पच्यमानाः- √पच्+यक्+शानच् प्र०पु०ब०व०।
7. विचेष्टन्ते- वि+ √चेष्ट् चेष्टायां लट् ल० प्र०पु०ब०व०।
8. गाढप्रहाराहताः- गाढश्च यः प्रहारश्च इति कर्म०धा०। गाढ प्रहारेण आहताः इति तृ०तत्पु०।
9. धारयन्ति- √धृ लट् ल० प्र०पु०ब०व०।

विशेष - उत्प्रेक्षा अंलकार है।

कुलीरा इव तिर्य्यक् परिभ्रमन्ति। अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इव परेण सञ्चार्यन्ते। मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति।

शब्दार्थ -

कुलीरा इव=केकड़ों के समान। तिर्यक्=तिरछे (कुटिल) परिभ्रमन्ति=घूमते हैं। अधर्मभग्नगतयः- अधर्मेण=धर्महीनता (असत् आचरण) से, भग्नगतयः=टूटी हुयी चाल वाले। पङ्गव इव=पंगु के समान। परेण=दूसरे के द्वारा। सञ्चार्यन्ते=चलाये जाते हैं। मृषावाद=असत्यभाष्ण रूपी (झूठ बोलना)। विष=विष के। विपाक=परिणाम से। सञ्जात=उत्पन्न। मुखरोगा इव=(आननव्याधि) मुखरोगियों के समान। अतिकृच्छ्रेण=बहुत कठिनाई से। जल्पन्ति=बोलते हैं।

अनुवाद -

केकड़े की तरह टेढ़ा-मेढ़ा चलते हैं। पाप के कारण चलने में असमर्थ पंगु के समान दूसरे के द्वारा चलाये जाते हैं। (अर्थात् मंत्री आदि के द्वारा कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर किये जाते हैं)। मिथ्या-भाषण रूप विष के परिणाम से उत्पन्न मुखरोगियों के समान अत्यन्त कष्ट से बोलते हैं।

टिप्पणी -

केकड़े के समान तिरछा चलने का अभिप्राय यहाँ कुटिल व्यवहार से है। अधर्म आचरण के कारण उनका उत्कर्ष रुक जाता है और वे उचित-अनुचित का विचार कर पाने में असमर्थ हो जाते हैं। अमात्यों आदि के सहारे से ही

राज-काज चला पाते हैं जिस प्रकार पैरों से विकलांग व्यक्ति दूसरे के सहारे से ही चल पाता है। जिस प्रकार विष का सेवन करने के परिणामस्वरूप चेहरा विकृत हो जाता है और व्यक्ति बड़ी कठिनाई से बोल पाता है उसी प्रकार अभिमान के कारण ऐसे लोग मुख को ऐसा बना कर रखते हैं कि वह विकृत सा लगता है और घमण्ड के कारण ठीक से बोल भी नहीं पाते।

संस्कृत-टीका – (भा०च०सि०च० टीका)

कुलीरेति। कुलीरा इव कर्कटा इव तिर्यक्तिरश्रवीना इव परिभ्रमन्ति परिभ्रमणं कुर्वन्ति। अधर्मेति अधर्मेणासदाचारणेन भग्ना भङ्गं प्राप्ता गतिर्गमनं सत्कर्मणि वृत्तिश्च येषामेवंभूताः पङ्गव इव खञ्जा इव परेणान्येन सञ्चार्यन्ते सञ्चरणशीलाः क्रियन्ते। मृषेति। मृषावादोऽसत्यभाषणं तस्य विपाकः परिणामस्तेन सञ्जातः समुत्पन्नो मुखरोगो येषामेतादृश इवातिकृच्छ्रेणातिकष्टेन जल्पन्ति ब्रुवन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें –

1. अधर्मभग्नगतयः–भग्ना गतिः येषां ते भग्नगतयः इति बहु०। अधर्मेण भग्नगतयः इति तृ०तत्पु०।
2. सञ्चार्यन्ते सम् √चर् गतौ+विच्+यक् लट् ल० प्र०पु०ब०व०।
3. मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगाः– मृषावादा एव विषाणि मृषावादविषाणि इति क०धा०। तेषां विपाकः मृषावादविषविपाकः इति ष०तत्पु०। तेन सञ्जातः मुखरोगः येषां ते इति बहु०।
4. जल्पन्ति– √जल्प् व्यक्तायां वाचि लट् ल०प्र०पु०ब०व०।

विशेष –

'कुलीरा इव' में पूर्णोपमा, अधर्म.... में पूर्णोपमा और पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग का सङ्कर है। अंतिम वाक्य में रूपक और पूर्णोपमा का सङ्कर है।

सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैरासन्नवर्त्तिनां शिरः शूलमुत्पादयन्ति। आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति।

शब्दार्थ –

सप्तच्छद=सप्तपर्ण। तरव=वृक्ष। इव=के समान। कुसुमरजोविकारैरासन्नवर्त्तिनां कुसुमरज= पुष्पपराग (के)। विकारैः=विकारों से। आसन्न=समीप में। वार्त्तिनां=स्थित लोगों के। शिरः=सिर का। शूलम्=दर्द। उत्पादयन्ति=उत्पन्न करते हैं। रजो=रजो गुण। आसन्नमृत्यव इव=मरणासन्न के समान। बन्धुजनमपि=सम्बन्धी जनों को भी।

न=नहीं। अभिजानन्ति=पहचानते हैं।

अनुवाद -

जिस प्रकार सप्तच्छद वृक्ष फूलों के पराग के विकार से समीप स्थित लोगों के सिर में दर्द उत्पन्न कर देते हैं उसी प्रकार (वे राजा) कुसुम अर्थात् नेत्रों के रजोगुण से उत्पन्न विकार से समीपस्थ लोगों के सिर में दर्द उत्पन्न कर देते हैं। मरणासन्न व्यक्ति के समान सम्बन्धीजनों को भी नहीं पहचानते हैं।

टिप्पणी -

यहाँ 'कुसुमरजोविकारैः' के दो अर्थ निकलते हैं- राजाओं के पक्ष में 'नेत्ररोगरूपी रजोगुण से उत्पन्न विकारों से (कुसुम शब्द का एक अर्थ नेत्ररोग भी है) तथा सप्तपर्ण वृक्ष के पक्ष में 'पुष्प पराग के विकारों से' (यहाँ 'कुसुमरज का अर्थ पुष्प पराग होगा)। तात्पर्य यह है कि सप्तपर्ण वृक्ष के फूलों के पराग की कुछ ऐसी प्रवृत्ति होती है कि उसके सम्पर्क में आने वाले लोगों के सिर में दर्द कर देती है। उसी प्रकार ये राजा लोग रजो गुण के प्रभाव से कुछ ऐसी नेत्र-भांगिमायें करते हैं कि उनको देखकर समीपस्थ लोग परेशान हो जाते हैं, उनके सिर में दर्द होता है। मरणासन्न व्यक्ति तो मानसिक अवस्था ठीक न होने के कारण सम्बन्धी जनों को नहीं पहचानते और ये राजा लोग धन के अहंकार के कारण।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

सप्तेति। सप्तच्छद-तरव-इव विषमच्छदवृक्षा इव कुसुमानिनेत्राणि तेषां ये रजोभिर्गुणैर्विकारा विकृयस्तैः। पक्षे कुसुमरजोविकारैः पुष्परागविकृतिभिः। 'कुसुमं स्त्रीरजो नेत्रे' इत्यनेकार्थः। पार्श्ववर्तिनां समीपस्थायिनां शिरःशूलं मस्तकव्यथामुत्पादयन्ति जनयन्ति। सप्तपर्णकुसुमरजसः शिरः शूलोत्पादकत्वं वैद्यके प्रसिद्धम्। आसन्नेति। आसन्नः समीपवर्ती मृत्युर्येषां त एवंविधा इव बन्धुजनमपि स्वजनमपि नाभिजानन्ति नोपलक्ष्यन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. सप्तच्छदतरव- सप्तच्छदानां तरवः इति ष०तत्पु०।
2. कुसुमरजोविकारैः- कुसुमानांरजांसि कुसुमरजांसि इति ष०तत्पु०। कुसुमरजसां विकारैः इति ष०तत्पु०।
3. आसन्नवर्तिनां- आसन्नं वर्तन्ते ये तेषाम् इति बहु०। (आ √सद्+क्त। √वृत्+णिनि।

4. उत्पादयन्ति- उत् √पद् गतौ+ णिच् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।

5. आसन्नमृत्यवः- आसन्नः मृत्युः येषां ते इति बहु॰।

6. अभिजानन्ति- अभि √ज्ञा लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।

विशेष - श्लेषानुप्राणित रूपक और पूर्णोपमा अलंकार है।

उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते। कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते। जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते।

शब्दार्थ -

उत्कुपितलोचना इव=रुग्ण (रोगी) नेत्रों वाले (व्यक्ति) के समान। तेजस्विनो=प्रतापी मनुष्यों को (पक्ष में सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों को)। न=नहीं। ईक्षन्ते=देखते हैं। कालदष्टा इव काल=महाविषधर (अधिक विषैला साँप) दष्टा=काटे हुए, इव=के समान। महामन्त्रैरपि=(विष-वैद्यों के) शक्तिशाली मंत्रों से भी, पक्ष में सचिवों की बड़ी-बड़ी मन्त्रणाओं से भी। न प्रतिबुध्यन्ते=नहीं जागते हैं। जातुषाभरणानीव=लाख के बने आभूषणों के समान। सोष्माणं=तापयुक्त पदार्थों अथवा अग्नि को, पक्ष में तेजस्वी व्यक्ति को। न=नहीं। सहन्ते=सहन करते हैं।

अनुवाद -

जिस प्रकार नेत्ररोगी सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों को नहीं देखते हैं उसी प्रकार (ये राजा लोग) प्रतापी मनुष्यों को (ईर्ष्या के कारण) नहीं देखते हैं। जिस प्रकार महाविषधर से डसे हुए व्यक्ति ओझाओं के बड़े-बड़े (शक्तिशाली) मंत्रों से भी चेतना को प्राप्त नहीं करते हैं उसी प्रकार (राजा लोग) सचिवों की उत्कृष्ट मंत्रणाओं से भी सचेत नहीं होते हैं। जिस प्रकार लाख के बने आभूषण अग्नि को सहन नहीं करते हैं (अग्नि के सम्पर्क में आते ही पिघल जाते हैं) उसी प्रकार (ये राजा) तेजस्वी व्यक्ति को सहन नहीं करते हैं।

संस्कृत-टीका - (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

उदिति। उत्प्राबल्येन कम्पितं धूतं लोचनं नेत्रं येषामेवंविधा इव तेजस्विनः प्रतापवतः पुरुषान्निस्पृहान्नेक्षन्ते नावलोकयन्ति। पक्षे तेजस्विनः सूर्यादिकान्। कालदष्टेति। निषिद्धकाले सन्ध्यादिरूपे दष्टा भक्षिताः। सर्पेणेति शेषः। एवंविधा इव महामन्त्रैर्जाङ्गलीप्रभृतिभिः षाड्गुण्यादिभिरपि च प्रतिबुध्यन्ते न बोधं प्राप्नुवन्ति। जातुषेति। जातुषाभरणानि लाक्षानिष्पन्नभूषणानीव सोष्माणं तेजस्विनं पुरुषं न सहन्ते मृष्यन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उत्कुपितलोचनाः उत्कर्षेण कुपिते उत्कुपिते (प्रादि) उत्कुपिते लोचने येषां ते इति बहु०।
2. तेजस्विनः- तेजः अस्यास्ति (तेजस्+विनि) द्वि०वि०ब०व०।
3. ईक्षन्ते- √ईक्ष् लट् ल० प्र०पु०ब०व०।
4. कालदष्टाः- कालेन दष्टाः इति तृ०तत्पु०।
5. प्रतिबुध्यन्ते- प्रति √बुध् बोधने+यक् लट् ल० प्र०पु०ब०व०।
6. जातुषाभरणानि- जतुना निर्मितानि। जतु+षुक्, अण्। जातुषानि च तानि आभरणानि इति कर्म० धा०।
7. सोष्माणम्- ऊष्मणा सहितम् इति तृ०तत्पु०।

विशेष - पूर्णोपमा अलंकार है।

दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृहृणन्त्युपदेशम्। तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति।

शब्दार्थ -

दुष्टवारणा इव=दुष्ट हाथी के समान। महामानस्तम्भ महा=बहुत बड़े, मान=परिमाण वाले, स्तम्भ=खम्भों से, निश्चलीकृता=स्थिर किये गये, पक्ष में-महा=अत्यधिक, मान=अहंकार रूपी, स्तम्भ=स्तम्भ से, निश्चलीकृत=जकड़े हुए। उपदेशम्=(महावत के) उपेदश को, पक्ष में-गुरुओं के सचिवों के उपदेश को। न=नहीं। गृहृणन्ति=ग्रहण करते हैं (मानते हैं)। तृष्णाविष=तृष्णारूपी विष से मूर्च्छिताः=सम्मोहित हुए। सर्वं=सबको। सुवर्णमयमिव=स्वर्ण निर्मित के समान। पश्यन्ति=देखते हैं।

अनुवाद -

दुष्ट हार्थियों के समान अत्यन्त अहंकार के द्वारा किये गये स्तम्भन से (हाथी के पक्ष में बड़े परिमाण वाले स्तम्भ द्वारा बांधने से) स्थिर होकर उपदेश ग्रहण नहीं करते (हाथी के पक्ष में सीख नहीं मानते। तृष्णारूपी विष से मोहित होकर सबको स्वर्णनिर्मित के समान देखते हैं।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

दुष्टेति। दुष्टवारणा इव मदोन्मत्तगजा इव महानत्युत्कृष्टो यो मानोऽहङ्कारस्तल्लक्षणो यः स्तम्भः स्थूणा तेन निश्चलीकृताः स्तब्धतां प्रापिताः सन्त उपदेशं शिक्षां न ग्रहृणन्ति नाददते। गजपक्षे महन्मानं

यस्यैवंविधो यः स्तम्भ आलानस्तम्भस्तेन निश्चलीकृता नद्धाः सन्त उपदेशं हस्तिपक। वाक्यं न गृह्णन्ति। अवगणयन्तीत्यर्थः। तृष्णेति। तृष्णैव विषं गरलं तेन मूर्च्छिता भ्रान्ताः कनकमयं सुवर्णमयमिव सर्वं पश्यन्ति विलोकयन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. दुष्टवारणाः- दुष्टाः वारणाः इति क०धा०।
2. तृष्णविषमूर्च्छिताः- तृष्णा एव विषम् इति क०धा०। तेन मूर्च्छिताः इति तृ० तत्पु०।
3. महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः- महाश्चासौ मानश्च इति महामानः इति क०धा० महामान एव स्तम्भः महामानस्तम्भः इति क०धा०। तेन निश्चलीकृता इति तृ०तत्पु०।
4. महाश्चासौ मानश्च इति क०धा०। तेन स्तम्भवत् निश्चलीकृताः (निश्चल+च्वि √कृ+क्त प्र०वि०ब०व०) इति तृ० तत्पु०।

   दुष्टवारणः=महत् मानं परिमाणं यस्य स महामानः इति बहु०। महामानः स्तम्भः महामानस्तम्भः इति क०धा०। तेन निश्चलीकृताः इति तृ०तत्पु०।

विशेष -

'महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः' में श्लेषानुप्राणित 'पूर्णोपमा' तथा 'रूपक' का सङ्कर है। 'तृष्णविष' में रूपक तथा 'कनकमयमिव' में गुणोत्प्रेक्षा होने से इन दोनों का सङ्कर है।

इषव इव पानवर्द्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति। दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति।

शब्दार्थ -

इषव इव=बाण के समान। पानवर्द्धिततैक्ष्ण्याः=राजाओं के पक्ष में-मदिरापान से बढ़ी हुयी उग्रता वाले, बाणों के पक्ष में- शान पर घिसने से बढ़ी हुयी तीव्रता वाले। परप्रेरिताः=राजापक्ष में-दूसरों (धूर्तों) के द्वारा बढ़ाये गये उत्साह वाले, बाण के पक्ष में- पर अर्थात् अन्य अर्थात् धनुष के द्वारा प्रवृत्त किये गये। विनाशयन्ति= (राजा पक्ष में प्रजाओं को), (बाण पक्ष में अपने लक्ष्य को) नष्ट कर देते हैं। दूरस्थितान्यपि=ऊँचाई पर भी स्थित, राजा पक्ष में दूर बसे हुए भी। फलानि इव=(आम आदि) फलों के समान। दण्डविक्षेपैः=डण्डा फेंकने के द्वारा, राजा पक्ष में- दण्ड आदि नीतियों के अनुचित प्रयोग द्वारा। महाकुलानि=उच्च कुलों को। शातयन्ति=नष्ट कर देते हैं। (फलों के पक्ष में गिरा देते हैं।)

अनुवाद -

शान पर चढ़ा कर तीक्ष्ण (राजा पक्ष में मद्य पिलाकर उग्र) किये गये तथा धनुष से छोड़े गये (राजा पक्ष में दूसरों से प्रोत्साहित किये गये) बाणों के समान (राजा लोग दूसरों का) (बाण पक्ष में शत्रु का) विनाश करते हैं। दूरवर्ती (पेड़ में लगे हुए) फलों के समान उत्तम कुलों को अर्थात् कुलीनों को दण्डनीति के (अनुचित) प्रयोग से (फल पक्ष में डण्डे के फेंकने से) गिरा देते हैं। (राजा पक्ष में नष्ट कर देते हैं।

अर्थात् जिस प्रकार ऊँचाई पर लगे हुए फलों को (लोग) डण्डा फेंककर गिरा लेते हैं उसी प्रकार दूर स्थित उच्च कुलों को भी (ये राजा लोग) दण्डनीति के (अनुचित) प्रयोग से नष्ट कर देते हैं।

संस्कृत-टीका - (भा॰च॰सि॰च॰ टीका) -

इषव इति। पानं मधुपानं निशानघर्षणं च ताभ्यां वार्धितं तैक्ष्ण्यं मदक्रौर्यं प्रहारशक्तिश्च येषामेवंविधा इषव इव बाणा इव परोऽन्यो मन्त्री च ताभ्यां प्रेरिता नोदिता विनाशयन्ति विनाशं जनयन्ति। दण्डो यष्टिर्भागधेयश्च तयोर्विक्षेपाः प्रहारा दुर्दिनानि च तैर्दूरस्थितान्यपि दविष्ठदेशवर्तीन्यपि फलानीव सस्यानीव महाकुलानि महाभिजनानि शातयन्ति पीडयन्ति पातयन्त्यपि च।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. पानवर्द्धिततैक्ष्ण्याः- पानेन वर्द्धितं तैक्ष्ण्यं येषां ते इति बहु॰। इषवः तथा राजानः पदों का विशेषण।
2. परप्रेरिताः- परैः प्रेरिताः इति तृ॰ तत्पु॰।
3. विनाशयन्ति- वि+ √नश् अदर्शने+णिच् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।
4. दण्डविक्षेपैः- दण्डानां विक्षेपैः इति ष॰तत्पु॰।
5. महाकुलानि- महान्ति कुलानि इति क॰धा॰।
6. शातयन्ति- √शद् शातने+णिच् लट् ल॰ प्र॰पु॰ब॰व॰।

विशेष - श्लिष्टपूर्णोपमा अलंकार है।

अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः। श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः। तैमिरिका इवादूरदर्शिनः।

शब्दार्थ -

अकालकुसुमप्रसवा इव=असमय में खिले हुए पुष्पों के समान। मनोहराकृतयोऽपि=सुन्दर आकृति वाले होते हुए भी। लोकविनाशहेतवः-लोक=लोगों

के, विनाश=नाश के, हेतवः=कारण होते हैं (पुष्प के पक्ष में संसार के विनाश के सूचक होते हैं)। श्मशानाग्नय=श्मशान की अग्नियों। इव=के समान। अतिरौद्र=अत्यन्त भीषण। भूतयः=सम्पत्तियों वाले (अग्नि पक्ष में राख वाले)। तैमिरिका=तिमिर रोगियों। इव=के समान। अदूरदर्शिनः=अदूरदर्शी (दूर तक न देख सकने वाले।

अनुवाद -

असमय में खिलने वाले फूलों के समान सुन्दर आकृति के होते हुए भी (वे राजा लोग) लोगों के विनाश के कारण (पुष्प पक्ष में सूचक) होते हैं। श्मशान की अग्नि के समान अत्यन्त भीषण ऐश्वर्य (अग्नि पक्ष में भस्म) वाले होते हैं। तिमिररोग (एक प्रकर का नेत्ररोग) के रोगियों के समान दूर की वस्तुओं को (राज पक्ष में दूरगामी परिणामों को) नहीं देख पाते हैं।

टिप्पणी -

बिना मौसम के फूलों का खिलना अपशकुन माना जाता है- "द्रुमौषधिविशेषाणामकाले कुसुमोद्गमः। फलप्रसवयोर्बन्धं महोत्पातं विदुर्बुधाः।।" तात्पर्य यह है कि फूल चाहे किसी भी समय में खिलें वे देखने में तो सुन्दर ही लगते हैं, परन्तु भिन्न ऋतु में खिलने वाले पुष्प महान उत्पातों के सूचक माने जाते हैं। उसी प्रकार लक्ष्मी के चक्कर में आये हुए ये राजा लोग हृदयाकर्षक स्वरूप वाले होते हुए भी प्रजा के विनाश के कारण बनते हैं जिस प्रकार तिमिर रोग का रोगी व्यक्ति दूरस्थित वस्तु को नहीं देख सकता है उसी प्रकार ये राजा अपने अनुचित कर्मों के दूरगामी परिणामों को नहीं जान पाते हैं।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च०टीका)

अकालेति। मनोहराश्चित्तहारिण्य आकृतय आकारा येषामेवंविधा अपि राजानो लोकविनाशहेतवो भवन्ति। सदाकृतिसाम्यादुपमानान्तरमाह- अकालेति। अकालेऽऋतौ कुसुमप्रसवा इव। तदुक्तम् 'द्रुमौषधिविशेषाणामकाले कुसुमोद्गमः। फलप्रसवयोर्बन्धं महोत्पातं विदुर्बुधाः'। श्मशानाग्नय इति। श्मशानं प्रेतवनं तस्याग्नय इवातिरौद्रा अन्येषां भयोत्पादिका भूतिः सम्पद्येषां ते तथा। पक्षेऽतिक्रूरा भूतिर्भस्म येषु। तैमिरिकेति। तिमिरं नेत्ररोगः स सञ्जातो येषां ते तैमिरिकास्त इवादूरदर्शिनः। भाविनं दोषं न पश्यन्तीत्यर्थः। दूरं परलोकं न पश्यन्तीत्यर्थो वा। पक्षेऽदूरदर्शिनः समीपस्थितवस्तुविलोकिनः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अकालकुसुप्रसवाः- कुसुमानां प्रसवा इति ष०तत्पु०। अकाले कुसुमप्रसवाः इति स०तत्पु०।

2. मनोहराकृतयः- मनोहरा आकृतिः येषां ते इति बहु०।
3. लोकविनाशहेतवः- लोकस्य विनाशः इति ष०तत्पु०। लोकविनाशस्य हेतवः इति ष०तत्पु०।
4. श्मशानाग्नयः- श्मशानस्य अग्नयः इति ष०तत्पु०।
5. अतिरौद्रभूतयः- अतिशयेन रौद्रा भूतिः येषां ते इति बहु०। भूतिर्भस्मानि सम्पत्तिहस्तिश्रृङ्गारयोः स्त्रियाम्' (मेदिनी कोश)।
6. तैमिरिकाः- तिमिरं सञ्जातं येषां ते इति बहु०।
7. अदूरदर्शिनः दूरं द्रष्टुं शीलं येषां ते दूरदर्शिनः (दूर √दृश्+णिनि प्र०वि०ब०व०) इति बहु०, न दूरदर्शिनः इति नञ् तत्पु०।

विशेष - श्लेष तथा पूर्णोपमा अलंकार है।

उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः। श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति। चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति।

शब्दार्थ -

उपसृष्टा इव=वेश्याओं के समान। भवनाः=घर। क्षुद्र (क्षुद्रैः)=नीच लोगों के द्वारा। अधिष्ठिताः=व्याप्त रहते हैं। प्रेतपटहा इव=मृतक के समीप में बजाये जाने वाले नगाड़ों के समान। श्रूयमाणा अपि=सुने जाते हुए भी। उद्वेजयन्ति=क्षोभ उत्पन्न करते हैं। महापातकाध्यवसाया इव=महापातकों को करने के विचार के समान। चिन्त्यमाना अपि=सोचे जाते हुए भी। उप्रदवम्=अशान्ति को। उपजनयन्ति=उत्पन्न करते हैं।

अनुवाद -

जिस प्रकार वेश्याओं के कोठे नीच लोगों से व्याप्त रहते हैं, उसी प्रकार (इन राजा लोगों के) महल भी विटों (धूर्तों) से आश्रित रहते हैं। जिस प्रकार मृतक के समीप बजाये जाने वाले वाद्य सुने जाते हुए भी उद्वेग को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार (ये राजा) सुने जाकर भी क्षोभ उत्पन्न करते हैं अर्थात् इनके विषय में किये जाने वाले वार्तालाप अथवा संभाषण भी उद्वेग को उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार महापातकों को करने का विचार भी (हृदय में) अशान्ति को उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार (इनके) विषय में सोचना भी अशान्त कर देता है।

टिप्पणी -

त्रिकाण्डशेष के अनुसार 'उपसृष्टा' का अर्थ रतिसंलग्ना गणिका है-

"उपसृष्टं मैथुनं स्यात्।" डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक "कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन" (पृ॰134) में इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार से किया है- "उनके घरों में वेश्याओं का प्रवेश हो जाता है जैसे बुरे शकुन के रूप में शहद की मक्खियों ने घर में छत्ता रख लिया हो।" नीचे पादटिप्पणी में लिखा है- "हर्षचरित में जो बीस उपलिंग या अपशकुनों की सूची है उसमें आंगन में मधु के छत्तों से उड़कर मधुमक्खियों का घर में भर जाना भी एक बुरा निमित्त है" डॉ॰ अग्रवाल ने जो अर्थ इस वाक्य का किया है उसी के संदर्भ में लिखा है "क्षुद्रा शब्द वेश्या और मधुमक्खी दोनों अर्थों में प्रयुक्त है जो अमरकोश में है।"

कहीं-कहीं शव के आगे ढोल, नगाड़े व बाजे बजाते हुए उसे श्मशान ले जाने की परम्परा है। ऐसे अवसर पर बजाया जाने वाला नगाड़ा ही 'प्रेतपटह' कहलाता है। जिस प्रकार ब्रह्महत्या आदि महापातकों को न केवल करने से अपितु उनको करने के विषय में सोचने मात्र से चित्त अशान्त हो जाता है। उसी प्रकार ऐसे राजाओं के न केवल संपर्क में आने से, अपितु उनके विषय में विचार करने मात्र से शान्ति भंग हो जाती है। मनुस्मृति में (11.54) ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी करना, गुरु पत्नी के साथ समागम तथा इन चारों पापों को करने वाले के साथ संसर्ग रखना यह पाँच महापातक कहे गये हैं-

"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
मद्यन्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥"

संस्कृत-टीका -

उपसृष्टेति। उपसृष्टा बहिःकृता इव क्षुद्रैर्विटैरधिष्ठितमाश्रितं भवनं गृहं येषां ते तथा। श्रूयमाणा इति। श्रूयमाणा आकर्ण्यमाना अत्युद्वेजयन्त्युद्वेगं जनयन्ति। क इव। प्रेतपटहा इव यथा मृतकवाद्यानि निर्वेदमन्येषां समुत्पादयन्तीत्यर्थः। कस्मिंश्चिद्देशे मृतकानां पुरस्ताद्वाद्यानि वाद्यन्त इति देशाचारः। चिन्त्येति। चिन्त्यमाना अपि चेतसि स्मर्यमाणा अपि महापातकं स्त्रीहत्यादि तदध्यवसाया इव तदभिप्राया इवोपद्रवं वञ्चकादिदुःखमुपजनयन्ति निष्पादयन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उपसृष्टाः- उप √सृज्+क्त+टाप् प्र॰वि॰ब॰व॰ राज। 'व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयराजत-भ्राजच्छशां षः' (अष्टा॰ 8.2.136) के अनुसार 'सृज्' के जकार को षकार हो जाता है।

2. क्षुद्राधिष्ठितभवना:- क्षुद्रैः अधिष्ठितं भवनं येषां यासाञ्च ते ताश्च इति बहु०।
3. श्रूयमाणा:- √श्रु+यक्+शानच् प्र०वि०ब०व०।
4. प्रेतपटहा:- प्रेतानां पटहाः प्रेतपटहाः इति ष०तत्पु०।
5. उद्वेजयन्ति- उद्+विज् भयचलनयो:+णिच् लट् ल०प्र०वि०ब०व०।
6. चिन्त्यमाना: √चिन्त्+यक्+शानच् प्र०वि०ब०व०।
7. महापातकाध्यवसाया:- महान्तश्च ये पातकाश्च इति क०धा०। तेषाम् अध्यवसाया: इति ष०तत्पु०।
8. उपद्रवम् उप √द्रु+अप् द्वि०वि०ए०व०।
9. उपजनयन्ति- उप √जन् प्रादुर्भावे+णिच् लट् ल०प्र०वि०ब०व०।

विशेष - पूर्णोपमा अलंकार है।

अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति। तदवस्थाश्च व्यसनशतशरव्यताम् उपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

शब्दार्थ -

अनुदिवसम्=प्रतिदिन। पापेन=पाप के द्वारा। आपूर्यमाणा इव=भरे जाते हुए से। आध्मातमूर्तयो= स्थूलशरीर वाले। भवन्ति=हो जाते हैं। च=और। तदवस्था:=उस प्रकार की अवस्था वाले (पाप से मोटे हुए शरीर वाले)। व्यसनशतशरव्यताम्शत=सैकड़ों, व्यसन=व्यसनों की शरव्यताम्=आश्रयता को। उपगता=प्राप्त हुए। पतितम्=गिरे हुए (पतित) अपि=भी। आत्मानं=स्वयं को। नावगच्छन्ति=नहीं जानते हैं। (जिस प्रकार) वल्मीकतृणाग्रावस्थिता=वल्मीक= बाँबी की, तृण=घास के, अग्र=आगे के भाग पर, अवस्थित=स्थित (रुके हुए)। जलबि़न्दव= जलबिन्दु (गिरते हुए अपने स्वरूप को नहीं जान पाते)।

अनुवाद -

प्रतिदिन मानो पाप से भरते हुए स्थूलदेह (फूले हुए शरीर वाले) हो जाते हैं और ऐसी अवस्था वाले होकर (वे राजा लोग) सैकड़ों दुर्व्यसनों के लक्ष्य बनकर बाँबी पर उगे हुए तृण के अग्रभाग पर अवस्थित जल-बिन्दु के समान पतित (राजा-पक्ष में अपने धर्म से च्युत और जलबिन्दु के पक्ष में भूमिच्युत) होने पर भी अपने को नहीं जानते हैं।

टिप्पणी -

यहाँ पर कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि पाप कर्मों के फल से ही भरकर मानो ऐसे राजा लोगों का शरीर फूल जाता है, मोटा हो जाता है। मनु ने व्यसनों को काम तथा क्रोध से उत्पन्न माना है-

"मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाटयां च कामजो दशको गणः॥
पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥" (मनु॰ 7.47-48)

अर्थात् शिकार, जुआ खेलना, परनिन्दा, परस्त्रीगमन आदि काम से उत्पन्न व्यसन हैं तथा चुगलखोरी, दुस्साहस और ईर्ष्या आदि क्रोध से उत्पन्न व्यसन हैं। यहाँ पर 'शत' शब्द का प्रयोग इन व्यसनों में तथा इनके अतिरिक्त व्यसनों में आसक्ति की अधिकता को प्रदर्शित करने के लिए किया गया है क्योंकि धर्मशास्त्र में सौ व्यसनों का कहीं उल्लेख नहीं मिला। दीमक व चींटी आदि जब धरती में अपना घर बनाती हैं तो मिट्टी को निकालकर वे ज़मीन में छेद करती हैं और उस मिट्टी का ढेर उस छेद के चारों ओर लग जाता है। इसी को वल्मीक अथवा लोकप्रचलित भाषा में बाँबी कहते हैं। प्रायः देखा जाता है कि धरती यदि थोड़ी नमीयुक्त भी दिखायी दे रही हो तब भी चींटियों द्वारा लगाये गये ढेर की मिट्टी विल्कुल सूखी हुयी होती है। इसी सन्दर्भ में कहा है कि बाँबी के ऊपर उगी हुयी घास की कोर से गिरने वाली जल की बूंद नीचे की उस सूखी मिट्टी में पूर्णरूप से समा जाती है उसके द्वारा सोख ली जाती है और उसे अपने गिरने का अपने अस्तित्व के समाप्त होने का आभास भी नहीं होता। उसी प्रकारदुर्व्यसनों में लिप्त हुए राजा लोग धर्म से पतित होते हुए अपने पतन को भी नहीं जान पाते हैं और अपना सर्वथा विनाश कर बैठते हैं।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)-

अन्विति। अनुदिवसं प्रतिदिवसं पानेनैनमापूर्यमाणाभ्रियमाणा इवाध्मातमूर्तयः स्थूलदेहा भवन्ति। तदिति। सैवावस्था येषां ते तदवस्थाः च समुच्चयार्थः। एवंविधा व्यसनानां द्यूतादीनां शतं तस्य सख्यतां मित्रतामुपगतां प्राप्ताः। 'शरव्यताम्' इति पाठे तु शरव्यं लक्ष्यं तस्य भावस्तत्त्वमुपगता इत्यर्थः। वल्मीकेति। वल्मीकमुपदेहिकागृहं तस्य तृणानि नवादीनि तेषामग्राणि प्रान्तानि तेष्ववस्थिता ये जलबिन्दवस्त इव पतितमपि मनुष्यजन्मनः सृस्तमप्यात्मानं नावगच्छन्ति न जानन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अनुदिवसम्-दिवसम् अनु (दिवसस्य पश्चात्) इति अव्ययी०।
2. आपूर्यमाणाः- आङ् √पूर्+यक्+शानच् प्र०वि०ब०व०।
3. आध्मातमूर्तयः- आध्माताः (आ √ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः+क्त) मूर्तयः येषां ते इति बहु०।
4. तदवस्थाः सैव अवस्था येषां ते इति बहु०।
5. व्यसनशतशरव्यताम्- व्यसनानां शतं व्यसनशतम् इति ष०तत्पु०। व्यसनशतस्य शरव्यं व्यसनशतशरव्यं इति ष०तत्पु०। तस्य भावः शरव्यता, ताम्।
6. वल्मीकतृणाग्रावस्थिताः- वल्मीकेषु जातानि तृणानि इति वल्मीकतृणानि इति स०तत्पु० वल्मीकतृणानां अग्राणि इति वल्मीकतृणाग्राणि इति ष०तत्पु० तेषु अवस्थिताः इति स०तत्पु०। जल बिन्दवः का विशेषण।
7. जलबिन्दवः- जलानां बिन्दवः इति जलबिन्दवः इति ष०तत्पु०।

विशेष - उत्प्रेक्षा अलंकार है।

विशेष-टिप्पणी -

इन सन्दर्भों के अध्ययन से तत्कालीन समाज के जनसाधारण में प्रचलित विश्वास एवं धारणाओं का चित्र उभर कर सामने आता है। प्रकृत प्रसंगों में ग्रहों द्वारा ग्रस्त होने, भूतों द्वारा पराभूत होने, मन्त्रों द्वारा वश में किये जाने, सत्त्वों (बलाओं) द्वारा रोके जाने, हिंसक प्राणियों द्वारा पकड़े जाने, वायुरोग द्वारा विचलित होने, पिशाचों द्वारा निगले जाने जैसे लोकविश्वास वर्णित हैं। कुछ अन्य धारणायें भी प्रचलित थीं जैसे-झूठ बोलने के कारण जिह्वा पक जाने से अत्यधिक कष्ट से बोलना, धूमकेतु के गिरने एवं असयम में उत्पन्न होने वाले फूलों को लोकविनाश का हेतु मानना, मृत व्यक्ति (प्रेत) को ले जाते हुए बजाये जाने वाले पटहों से व्याकुल होना, दिन प्रतिदिन मोटे होना मानो पाप के कारण फूलना, कुटिल आचार के लिए मुहावरे यथा केकड़ों की भाँति तिरछे चलना आदि।

अपरे तु स्वार्थनिष्पादनतत्परैर्धनपिशिग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीबकैर्द्यूतं विनोद इति परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता शौर्य्यमिति, स्वदारपरित्यागोऽव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीत-वाद्य-वेश्याभिसक्ती रसिकतेति, महापराधानाकर्णनं महानुभावतेति, परिभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, देवावमाननं महासत्त्वतेति, वन्दिजनख्यातिर्यश इति तरलतोत्साह इति, अविशेषज्ञतापक्षपातित्वमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः

प्रतारणाकुशलैधूर्तैरमानुषोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्य्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्ध-दिव्योचितचेष्टानु भावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति।

शब्दार्थ -

अपरे तु=दूसरे तो (कुछ राजा)। स्वार्थनिष्पादनपरैः=(स्वार्थ) अपने प्रयोजन की (निष्पादन) सिद्धि में (परैः) लगे हुए। धनपिशितग्रासगृध्रैः=(धनपिशित) धनरूपी माँस को (ग्रास) खाने में (गृध्रैः) गिद्धों के समान। आस्थाननलिनीबकैः=(आस्थान) राजभवन रूपी (नलिनी) कमलवन में (बकैः) बगुलों के समान। दोषानपिगुणपक्षमध्यारोपयद्भिः=(दोषान्) दोषों को (अपि) भी (गुणपक्ष) गुणसमूह के (मध्य) अन्तर्गत आरोपयद्भिः) आरोपित करने वाले। अन्तः भीतर (ही भीतर) स्वयमपि=स्वयं भी। विहसद्भिः=हंसने वाले। प्रतारणा=ठगी में। कुशलैः=निपुण। धूर्तैः=धूर्तों के द्वारा। द्यूतं=जुआ। विनोद=मनोरंजन है। इति=इस प्रकार। परदाभिगमनं=परस्त्रीगमन। (दूसरे की पत्नी के साथ सम्भोग करना) वैदग्ध्यम्=चतुरता है। मृगया=आखेट (शिकार)। श्रम इति=(व्यायाम) परिश्रम है इस प्रकार। पानं=मदिरापान। विलास=विलासिता (भोगविशेष) है। प्रमत्तता=गर्विता (प्रमाद अथवा असावधानी से काम करना अथवा आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वासी होना)। शौर्यम्=पराक्रम (वीरता) है। स्वदारपरित्यागो=अपनी पत्नी का त्याग (छोड़ देना)। अव्यसनिता इति=व्यसन से मुक्त होना (अनासक्ति) है इस प्रकार। गुरुवचनावधीरणम्=गुरु के वचन (बात) की अवमानना (उल्लंघन)। अपरप्रणेयत्वमिति=पराधीनता का न होना है (पर-दूसरे की, प्रणेयत्वम्-अधीनता,अ=नहीं)। अजितभृत्यता=सेवकों का वश में न होना। सुखोपसेव्यत्वमिति=सुखापूर्वक सेवा करने देना है। नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्याभिसक्ती=नाच-गानों-वाद्यों और वेश्याओं में आसक्ति। रसिकतेति=रसज्ञता है। महापराधानाकर्णनं=बड़े-बड़े अपराधों को न सुनना। महानुभावतेति=उदारहृदयता है। परिभवसहत्वं=(दूसरों के द्वारा किये गये) तिरस्कार को सहना। क्षमेति=क्षमा करना है इस प्रकार। स्वच्छन्दता=स्वैरिता (मनमानी करना)। प्रभुत्वमिति=ऐश्वर्य है इस प्रकार। देवावमाननं=देवताओं की अवहेलना। महासत्त्वतेति=महापराक्रमशाली होना है। वन्दिजनख्यातिः=भाट लोगों द्वारा की गयी प्रशंसा। यश इति=कीर्ति है इस प्रकार। तरलता=चञ्चलता। उत्साह इति=उत्साह है। अविशेषज्ञता=विशेष ज्ञान का न होना। अपक्षपातित्वम् इति=पक्षपात का न होना है इस प्रकार। अमानुषोचिताभिः=अलौकिक व्यक्तियों के लिए उपयुक्त। स्तुतिभिः=स्तुतियों के द्वारा। प्रतार्य्यमाणा=ठगे जाते हुए। वित्तमदमत्तचित्ता=(वित्त) धन के (मद) घमण्ड से (मत्त) उन्मत्त (चित्ता) मन वाले। निश्चेतनतया=चेतना

शून्य (विवेकहीनता) होने के कारण। तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना तथैव इति=ऐसा ही है इस प्रकार। आत्मनि=अपने में। आरोपित=(उन धूर्तों की बातों का) आरोप करके। अलीक=झूठा। अभिमाना=अभिमान करने वाले। मर्त्यधर्माणोऽपि=मरणशील होते हुए भी। आत्मानम्=अपने में। इव=मानो। दिव्यांशावतीर्णम्=अलौकिक अंश के अवतार को। सदैवतमिव=मानो देवत्व को। अतिमानुषम्=अतिमानवत्व को (मानवता से भी ऊपर और अधिक)।उत्प्रेक्षमाणाः=मानते हुए। प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः=(दिव्योचित) दिव्य जनों के अनुकूल (चेष्टानुभावाः) क्रियाओं और हावभावों को (प्रारब्ध) प्रारम्भ करने वाले। सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति= (सर्वजनस्य) सब लोगों की (उपहास्यताम्) हंसी के पात्र (उपयान्ति) बनते हैं।

अनुवाद -

दूसरे तो (कुछ राजा), अपने प्रयोजन की सिद्धि में लगे हुए, धन रूपी माँस को खाने में गिद्धों के समान, राजभवन रूपी कमलवन में बगुलों के समान, दोषों को भी गुण-समूह के मध्य आरोपित करने वाले (मानने वाले), भीतर ही भीतर स्वंय भी हँसने वाले, ठगी में निपुण धूर्तों के द्वारा-- 'जुआ मनोरंजन है' इस प्रकार, परस्त्रीगमन चतुरता है, शिकार (आखेट) परिश्रम है, मदिरापान विलासिता है, प्रमाद पराक्रम है, अपनी पत्नी का त्याग अनासक्ति है, गुरु के वचन की अवमानना पराधीनता का न होना है, सेवकों का वश में न होना सुखपूर्वक सेवा करने देना है, नाच-गानों-वाद्यों और वेश्याओं में आसक्ति रसज्ञता है, बड़े-बड़े अपराधों को न सुनना उदारहृदयता है, तिरस्कार को सहना क्षमा करना है, मनमानी करना ऐश्वर्य है, देवताओं की अवहेलना महापराक्रमशालित्व है, भाट लोगों द्वारा की गयी प्रशंसा कीर्ति है, चञ्चलता उत्साह है, विशेष ज्ञान का न होना पक्षपात का न होना है, इस प्रकार अलौकिक व्यक्तियों के लिए उपयुक्त स्तुतियों (प्रशंसाओं) के द्वारा ठगे जाते हुए, धन के घमण्ड से उन्मत्त मन वाले, विवेकहीनता के कारण 'ऐसा ही है' इस प्रकार अपने में (उन धूर्तों की बातों का) आरोप करके झूठा अभिमान करने वाले, मरणशील होते हुए भी अपने में मानो दिव्य अंश के अवतार को, मानो देवत्व को, अतिमानवत्व को मानते हुए दिव्य जनों के अनुकूल क्रियाओं और हाव-भावों को आरम्भ करते हुए सब लोगों की हँसी के पात्र बनते हैं।

टिप्पणी -

इस अनुच्छेद में मुख्य वाक्य है कि "कुछ राजा तो सब लोगों की हँसी के पात्र बनते हैं।" किस प्रकार? धूर्तों द्वारा की गयी अमानुषोचित प्रशस्तियों से ठगे जाते हुए "स्वार्थनिष्पादनतत्परैः, धनपिशितग्रासगृध्रैः, आस्थाननलिनीबकैः, दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिः, अन्तः स्वयमपि विहसद्भिः, प्रतारणाकुशलैः-

ये सब 'धूर्तै:' शब्द के विशेषण हैं और तृतीयान्त हैं। 'प्रतार्य्यमाणा से लेकर प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावा:' तक 'अपरे तु' के विशेषण हैं और प्रथमान्त हैं। 'द्यूतं विनोद इति' से 'अविशेषज्ञता अपक्षपातित्वमिति' तक अमानुषोचित प्रशस्तियां हैं जिनके द्वारा धूर्त लोग कुछ राजाओं को ठग लेते हैं।

'स्वार्थसिद्धि में लगे हुए' का तात्पर्य यह है कि वे अपने लाभ को देखते हुए उनकी चापलूसी करते रहते हैं और उनकी झूठी प्रशंसायें अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। धन में माँस का आरोप किया है जिस प्रकार माँस को देखते ही गिद्ध उस पर टूट पड़ते हैं उसी प्रकार धन के पीछे ये धूर्त लोग लगे रहते हैं। जिस प्रकार कमलवन में बगुले कमल के पत्तों के बीच छिपकर मछलियों का शिकार करते हैं उसी प्रकार ये धूर्त राजभवन में रहते हुए ही वहाँ उपस्थित लोगों को ठगकर अपना काम निकाल लेते हैं।

ये धूर्त व्यसनों एवं दुर्गुणों की भी गुणों के रूप में प्रशंसा करके उन राजाओं को दोषों में ही उलझाये रखते हैं। और उनको ठग कर मन ही मन उपहास करते हैं। वे ठगी में कुशल धूर्त किस प्रकार दोषों को गुणों के रूपों में प्रतिपादित करते हैं- द्यूतक्रीडा (जुआ) महान अनर्थकारी है, महाभारत इसका उदाहरण है, तथापि वे उसे मनोरंजन का साधन बताते हैं। दूसरों की स्त्रियों के साथ सहवास को चतुरता बताते हैं जबकि वह अत्यन्त निकृष्ट एवं पापकर्म है। शिकार को अच्छा व्यायाम कहते हैं, परन्तु प्राणियों की हिंसा करना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। मदिरापान प्रमुख महापातकों में से एक है पर उसे वे लोग (धूर्त) विलासिता कहते हैं। प्रमाद अथवा अवासधानी को वे शूरता कहते हैं प्रमाद-अर्थात् सेवकवर्ग और कर्मचारी कुछ भी करते रहें उचित अथवा अनुचित उन्हें कुछ न कहना शूरता है।

वे धूर्त लोग पत्नी के परित्याग को अनासक्ति कहते हैं जबकि विवाह-सूत्र में बंधने के बाद पत्नी धर्म का निर्वाह न करना भी पाप ही है। गुरुजनों के हितकारी वचनों की अवहेलना महान दोष है तथा समय बीतने पर उसके दुष्परिणाम भी सामने आते हैं, परन्तु उसे तो वे स्वाधीनता कहते हैं। दोषी सेवक को भी दण्ड न देना कभी-कभी कुल का समूल नाश कर देता है उसे वे सेवकवर्ग को सुखपूर्वक सेवा करने देना मानते हैं। अपमान को सहना तो कायरता की निशानी है जिसे वे सहनशीलता कहते हैं। चापलूस बन्दियों द्वारा की गयी झूठी प्रशस्तियों को अपना यशगान समझते हैं। अविशेषज्ञता को निष्पक्षता बताते हैं। अविशेषज्ञता अर्थात् कौन कर्मचारी किस कोटि का है इस विशेष ज्ञान का न होना परिश्रमी एवं आलसी, कार्यक्षम एवं अयोग्य सभी के साथ एक जैसा व्यवहार करने से उत्साही कर्मचारियों को भी प्रेरणा नहीं मिलती।

इस प्रकार वे ठगी में निपुण धूर्त लोग राजाओं के दोषों को भी गुणों के रूप में कहते हुए उनकी इस प्रकार झूठी प्रशंसा करते हैं जो देवताओं के अनुरूप होती है और वे राजा भी धन के घमण्ड से अपनी बुद्धि का प्रयोग न करते हुए उन सब बातों को सत्य मान लेते हैं और नश्वर प्राणी होते हुए भी स्वयं को देवताओं के समान मानते हुए उनके समान चेष्टाएं करने लगते हैं और हंसी के पात्र बनते हैं।

संस्कृति-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

अपरे त्विति। अपरेऽन्ये। तु पुनरर्थे। राजानः। श्रीमतां रोषान्तरमप्याह-अपरे त्विति। इति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्‌भिर्धूर्तैर्विप्रतारकैः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपहासयोग्यतामुपयान्ति प्राप्नुवन्तीत्यन्वयः। कीदृशैर्धूर्तैः। स्वेति। स्वस्यात्मनो योऽर्थः प्रयोजनं तस्य निष्पादनं करणं तत्र परैस्तत्परैः। धनमिति। धनं द्रव्यं तदेव पिशितं मांसं तस्य ग्रासो ग्रहणं तस्मिन्। गृध्रैर्दूरदृग्भिर्यथा। द्रव्यार्जनपरैरित्यर्थः। आस्थानेति। आस्थानं नृपोपवेशनस्थलं तदेव नलिनी कमलिनी तस्यां बकैर्धूर्तैः। यथा बका नलिनीमाश्रित्य तदाश्रयबलेन स्वात्मानमाच्छाद्य येन केन प्रकारेण परान्वञ्चयित्वाकस्मादेव परान्भक्षयन्ति तद्वदास्थानबलेन परान्वञ्चयित्वा स्वानि भक्षयन्ति। इतिशब्दार्थमाहद्यूतमिति। द्यूतं दुरोदरं विनोदः क्रीडामात्रम्। न चैतद्विहिते किंचित्पातकमस्तीति भावः। परेति। परदाराः परस्त्रियस्तेषामभिगमनं सम्भोगो वैदग्ध्यमिति चातुर्यमित्यर्थः। मृगयेति मृगयां मृगव्यां श्रम इति। अभ्यासः खुरलीति श्रमो योगाभ्यासः' इति कोशः। न तु परप्राणव्यापादनजनितं किमपि पातकमस्तीति भावः। पानमिति। पानं मद्यादीनां क्षीबतां शौर्यं सुभटकृत्यमिति। स्वेति। स्वस्य दाराः स्त्री तस्याः परित्यागं व्यजनमव्यसनितानासक्तिता इति। न तु धर्माधिक्यम्। गुरुरिति। गुरुर्हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टा तस्यवचनं वचस्तस्यावधीरणमुल्लङ्घनमपर-प्रणेयत्वमन्यवश्यत्वम् 'वश्यः प्रणेयः' इति कोशः गुरुवचनावधीरणेन क्रूरोऽयं प्रभुरिति भियापरे सामन्तादयो पश्यत्वं प्रतिपद्यन्त इति तेषामाशयः। अजितेति। भिक्षार्थं ताडिता भृत्या यस्य राज्ञः सम्यक्सेवां कुर्वन्ति स जितभृत्योऽन्यस्त्वजितभृत्यस्तस्य भावस्तत्ता ताम्। इदं च नृपतेर्दूषणम्। वैगुण्ये भृत्यानामवश्यं शिक्षा प्रदातव्येति राजचिह्नम्। तदुक्तम्- 'शब्दमनमशठपालनमाश्रितभरणं च राजचिह्नानि' इति। तस्मिन्सुखोपसेव्यत्वं सुखोपसेवितुं योग्यः सुखोपसेव्यस्तस्य भावस्तत्त्वम्। सुखोपसेव्योऽयं नृप इति लोके ख्यातिमात्रं गुण आरोप्यते। नृत्येति। नृत्यं नाट्यम्, गीतं गानम्, वाद्यमातोद्यम्, वेश्या वारवध्वः, तास्वभिसक्तिमत्यासक्तचित्ततां रसिकता रसभिज्ञता इति। महेति। महापराधानां कौरवयुद्धादीनामवकर्णनं श्रवणं

महानुभावता महाधर्मिष्ठता। अदातृत्ववशात् मागधादिभिर्विहितस्य गालिप्रदानादिपराभवस्य तिरस्कृतेः महत्त्वं क्षमेति क्षान्तिः। स्वच्छन्दतां निरवग्रहतां प्रभुत्वमैश्वर्यम्। देवेति। देवा अर्हदादयस्तेषामवमाननमवगणनं महासत्त्वता महाधैर्यता। बन्दीति। बन्दिजना मागधादयस्तेषां ख्यातिं प्रसिद्धिम्। यशः श्लोक इति। एतेन पण्डितजनप्रदानं न श्लोक जनकमिति भावः। तरलतां चपलतामुत्साहः प्रगल्भता इति। अवीति। अविशेषज्ञतां विशेषाविशेषानभिज्ञतामपक्षपातित्वं माध्यस्थमिति। अत्र 'द्यूतम्' इत्यारभ्यपूर्वपूर्वस्योद्देश्य तयोत्तरोत्तरस्य बाध्यमानतया पूर्वस्मिन्दोष उत्तरस्य गुणस्यारोपः अत्राध्यारोपलक्षणो रूपकव्यासङ्ग जनकत्वं सातिशयसुखजनकत्वादिकं साम्यं स्वयमूहनीयम्। अथ धूर्तान्विशेषयन्नाह अन्त इति। अन्तर्मध्ये स्वयमप्यात्मनापि विहसद्भिर्हास्यं कुर्वद्भिः। अस्मद्विप्रतारणानभिज्ञ इति हास्यनियामकम्। प्रतारणा वञ्चना तत्र कुशलैरभिज्ञैः किं क्रियमाणा धनिनः। अमानुषलोको देवलोकस्तस्योचिताभिर्योग्याभिः। स्तुतेर्विशेषणम्। वित्तेति। वित्तस्य द्रव्यस्य मदस्तेन मत्तं चित्तं येषां ते तथा। अतएव निश्चेतनतया निर्गता चेतना ज्ञानं यस्मात्तस्य भावस्तत्ता तया। तथैवेति। यथा यथा प्रतार्यमाणस्तथैवेत्यर्थः। आत्मन्यारोपितं स्थापितमलीकं मिथ्याभिमानं यैस्ते तथा मर्त्यधर्माणोऽपि मर्त्यस्य मनुष्यस्य धर्मा गमनादयो येषामेवंविधा अपि। दिव्येति। दिव्या देवसम्बन्धिनो येंऽशा भागास्तैरवतीर्णमुत्पन्नमिव सदैवतमिव देवताधिष्ठितमिवातिमानुषं कर्मातिक्रम्यवर्तमानमात्मानमुत्प्रेक्षणामा मन्यमानाः। प्रारब्धेति। प्रारब्धा या दिव्योचिता देवजनयोग्याश्चेष्टाः क्रियास्ताभिरनुभावो माहात्म्यं येषां ते तथा। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. स्वार्थ निष्पादनतत्परैः- स्वस्य अर्थः इति स्वार्थः इति ष०तत्पु०। स्वार्थस्य निष्पादनं इति स्वार्थनिष्पादनं इति ष०तत्पु०। (निस् √पद्+णिच्+ल्युट्)। तस्मिन् परः इति स० तत्पु०। तैः। धूर्तैः पद का विशेषण।
2. धनपिशितग्रासगृध्रैः- धनानि एव पिशितानि इति धनपिशितानि इति क०धा० समास। धनपिशितानां ग्रासाः इति ष०तत्पु०। तेषु गृध्रैः इति स०तत्पु०। धूर्तैः का विशेषण।
3. आस्थाननलिनीबकैः- आस्थानम् एव नलिनी इति आस्थाननलिनी इति कर्म०धा० समास। तस्यां बकैः इति आस्थाननलिनीबकैः इति स०तत्पु०। धूर्तैः का विशेषण।
4. विनोदः- वि √नुद्+घञ् प्र०वि०ए०व०।

5. परदाराभिगमनम्- परस्य दार: इति ष॰तत्पु॰। तै: सह अभिगमनम् इति तृ॰तत्पु॰।
6. वैदग्ध्यम्-विदग्धस्य भाव: इति वैदग्ध्यम् विदग्ध+ष्यञ्)।
7. पानम्- √पा+युच् 'आतो युच्' प्र॰वि॰ए॰व॰।
8. विलास:- वि √लस्+घञ् प्र॰वि॰ए॰व॰।
9. प्रमत्तता- प्र √मद्+क्त+तल्+टाप् प्र॰वि॰ए॰व॰।
10. शौर्यम्-शूर+ष्यञ्।
11. स्वदारपरित्याग:- स्वस्य दार: इति क॰धा॰। तस्य परित्याग: इति। ष॰तत्पु॰।
12. अव्यसनिता- न व्यसनिता (वि √अस्+ल्युट्+इनि+तल्+टाप्)।
13. गुरुवचनावधीरणम्- गुरो: वचनम् इति ष॰तत्पु॰। तेषां अवधीरणम् इति ष॰तत्पु॰।
14. अपरप्रणेयत्वम्- परै: प्रणेयत्वम् इति तृ॰तत्पु॰। न परप्रणेयत्वम् इति नञ् तत्पु॰।
15. अजितभृत्यता-जित: भृत्यो येन स: इति बहु॰। तस्य भाव: इति जितभृत्यता। न जितभृत्यता इति नञ् तत्पु॰।
16. सुखोपसेव्यत्वम्- सुखेन उपसेव्य: इति तृ॰तत्पु॰। तस्य भाव: (उप √सेव्+ण्यत्+त्व)।
17. नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्ति:- नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्या च इति द्वन्द्व स॰। तासु अभिसक्ति: इति स॰तत्पु॰। (अभि √सञ्ज्+क्तिन्)।
18. रसिकता- √रस्+ठञ्+टाप्।
19. महापराधानाकर्णनम्- महाश्चासौ अपराधश्च इति कर्म॰धा॰ (अप √राध्+घञ्)। तेषां अनाकर्णनम् इति॰ ष ॰तत्पु॰।
20. महानुभावता- महती अनुभावता (अनु √भू+घञ्+तल्+टाप्)।
21. परिभवसहत्वम्- परिभवस्य सहत्वं इति ष॰तत्पु॰ (परि √भू+अप्)।
22. क्षमा- √क्षम्+अङ्+टाप्।
23. स्वच्छन्दता-स्वच्छन्द+तल्+टाप्।
24. देवावमाननम्-देवानाम् अवमाननम् (अव √मान्+ल्युट्) इति ष॰तत्पु॰।
25. महासत्त्वता-महत् सत्त्वं महासत्त्वं इति क॰धा॰ (तल्+टाप्।)
26. बन्दिजनख्याति:- बन्दिनश्च ते जनाश्च इति कर्मधा॰। तै॰ख्याति: इति तृ॰तत्पु॰।
27. तरलता- तरल+तल्+टाप्।
28. उत्साह:- उत् √सह्+घञ्।

29. अविशेषज्ञता- न विशेषज्ञता (नञ्) विशेष √ज्ञा+क+तल्+टाप्)।
30. अपक्षपातित्वम्-न पक्षपातित्वम् इति नञ् तत्पु० (पक्षपात+इन+त्व)।
31. अध्यारोपयद्भिः- अधि+आङ् √रुह् विमोहने णिच्+शतृ तृ०वि० ब०व०। धूर्तैः पद का विशेषण।
32. विहसद्भिः वि √हस्+शतृ तृ०वि०ब०व०।
33. प्रतारणाकुशलैः- प्रतारणासु कुशलैः (स०तत्पु०), 'प्रतारणा' प्र √तृ+णिच्+युच्+टाप्।
34. अमानुषोचिताभिः- मानुषेभ्यः उचिता इति च०तत्पु०। न मानुषोचिताः इति नञ् तत्पु०। ताभिः। स्तुतिभिः पद का विशेषण।
35. प्रतार्यमाणाः- प्र √तृ+णिच्+युक्+शानच् प्र०वि०ब०व०। 'अपरे' पद का विशेषण।
36. वित्तमदमत्तचित्ताः वित्तस्य मद इति वित्तमदः इति ष०तत्पु०। वित्तमदेन मत्तं चित्तं येषां ते इति बहु०। 'अपरे' पद का विशेषण।
37. निश्चेतनया-निर्गता चेतना यस्मात् स निश्चेतनः इति बहु०। तस्य भावः इति निश्चेतनता। तया।
38. आरोपितालीकाभिमानाः- आरोपितः अलीकः अभिमानः यैः ते इति बहु०। अपरे पद का विशेषण।
39. मर्त्यधर्माणः- मर्त्यस्य धर्माः येषां ते इति बहु०। अपरे पद का विशेषण।
40. दिव्यांशावतीर्णम्- दिव्याः अंशाः इति कर्म०। दिव्यांशेभ्यः अवतीर्णम् इति पं०तत्पु०।
41. उत्प्रेक्षमाणाः- उत्+प्र √ईक्ष्+शानच् प्र०वि०ब०व०। अपरे पद का विशेषण।
42. प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः- प्रारब्धाः दिव्योचिताः चेष्टाः इति कर्म०। दिव्याय उचिताः इति दिव्योचिताः इति च०तत्पु। दिव्योचिताः चेष्टा इति कर्म० (ताभिः अनुभावो येषां ते इति बहु०। अपरे पद का विशेषण।
43. सर्वजनस्य-सर्वे जनाः सर्वजनः इति कर्म०। तस्य।
44. उपहास्यताम्-उप √हस् + ण्यत् + तल+टाप् द्वि०वि०ए०व०।
45. उपयान्ति- उप √या लट् ल०प्र०पु०ब०व०।

विशेष - रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार है।

आत्मविडम्बनाञ्चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति। मनसा देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूतसम्भावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं सम्भावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कन्ते।

शब्दार्थ-

च=और। अनुजीविना=आश्रित (सेवक)। जनेन=जनों के द्वारा। क्रियमाणाम्=की जाती हुयी। आत्मविडम्बनाम्=अपनी विडम्बना (वञ्चना) की। अभिनन्दन्ति=प्रशंसा करते हैं। देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूतसम्भावनोपहता:= (देवता) देवत्व के (अध्यारोपण) आरोपण द्वारा (प्रतारणा) ठगे जाने से (सम्भूत) उत्पन्न (सम्भावना) देवरूपत्व के निश्चय से (उपहता:) नष्ट हुयी बुद्धि वाले। मनसा=मन ही मन। आत्मबाहुयुगलं=अपनी दोनों भुजाओं के। अन्त:प्रविष्टापरभुजद्वयमिव=(अन्त:) भीतर (प्रविष्टम्) छिपी हुयी (अपर) दसूरी (भुजद्वयम्) दो भुजाओं वाले (इव) के समान। सम्भावयन्ति=मानते हैं। स्वललाटम्=अपने मस्तक में। त्वगन्तरितम्=त्वचा के भीतर। तृतीयलोचनं-तीसरे नेत्र की। आशङ्कन्ते=आशंका करते हैं।

अनुवाद -

आश्रित जनों द्वारा की जाने वाली अपनी विडम्बना (अर्थात् दोषों को गुण बताकर की जाने वाली वंचना) का भी अभिनन्दन करते हैं। देवता के आरोप रूप वंचना से उत्पन्न देवत्व के निश्चय से नष्ट बुद्धि वाले (राजा) मन ही मन अपनी दोनों भुजाओं के भीतर अन्य दो भुजाओं की सम्भावना करते हैं (अर्थात् धूर्तों द्वारा ठगे जाते हुए अपने को चतुर्भुज विष्णु मान बैठते हैं) अपने ललाट में त्वचा से आवृत तीसरे नेत्र की आशंकाकरते हैं। (अर्थात् अपने को त्रिनेत्र शिव मानते हैं)।

टिप्पणी -

'अन्त:प्रविष्ट.... बाहुयुगलं' में अन्य दो भुजाओं की उत्प्रेक्षा करने से इस बात की व्यंजना होती है कि वे राजा अपने में विष्णुत्व की संभावना करने लगते हैं। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा वस्तु ध्वनि की गयी है। डॉ॰ अग्रवाल का मत है- 'यहाँ गुप्तकालीन उन विष्णु-मूर्तियों की ओर संकेत है जिनके कंधे से कोहनी तक केवल दो भुजायें दिखाई जाती हैं और शेष दो कोहनी के पास से निकलती हुयी बनायी जाती हैं। उनके पीछे यही भावना रहती थी कि कन्धे से कोहनी तक के भाग में दो भुजाओं के भीतर दो और छिपी हुयी हैं। मथुरा संग्रहालय में इस प्रकार की कई मूर्तियां हैं। (काद॰सां॰अ॰, पृ॰127)।

'त्वगन्तरित॰' इत्यादि में भी ध्वनि है कि वे स्वयं को शिव समझने लगते हैं। डा. अग्रवाल का मत है- 'यह शिव की उन मूर्तियों की ओर संकेत है जिनमें तीसरा नेत्र नहीं बनाया जाता और समझा जाता था कि वह त्वचा के भीतर छिपा है।' (काद॰सां॰अ॰,पृ॰127)

संस्कृत-टीका- (भा॰चसि॰च॰ टीका) -

अनुजीविना जनेन सेवकजनेन क्रियमाणां विधीयमानामात्मविडम्बनाम-सद्गुणारोप- लक्षणामभिनन्दन्ति प्रशंसन्ति। चकारः पूर्वोक्तसमुच्चयार्थः। विभूतिमतां राज्ञां पुनर्दोषान्तरमाह- मनसेति। देवताया हरिहरादेरध्यारोपणं आरोपणं तेन विप्रतारणं वञ्चनं तस्मादिति। असदिति। असद्भूतासद्रूपा या सम्भावना देवरूपत्वेन निश्चयस्तेनोपहता विनष्टबुद्धयः। देवत्वाध्यारोपत्वनिमित्तमूलानि प्रदर्शयन्नाह-अन्तरिति। अन्तर्मध्ये प्रविष्टमपरमन्यद्भुजद्वयं यस्मिन्नेवंविधमिवात्मनो बाहुयुगलं स्वकीयं भुजयुगं सम्भावयन्ति सम्भावनाविषयीकुर्वन्ति। एतेन स्वस्मिंश्चतुर्भुजत्वं ख्यापितम्। त्रिनेत्रत्वमप्याह-त्वगिति। त्वक्कृतिस्तयान्तरितं पिहितं तृतीयं लोचनं यस्मिन्नेतादृशं स्वललाटं निजालिकमाङ्कन्त आरेकाविषयीकुर्वते।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. आत्मविडम्बनाम्-आत्मनः विडम्बना इति ष॰तत्पु॰। ताम्।
2. अनुजीविना- अनु+√जीव्+णिनि तृ॰वि॰ए॰व॰।
3. क्रियमाणाम्- √कृ+यक्+शानच्+टाप् द्वि॰वि॰ए॰व॰।
4. अभिनन्दन्ति- अभि √नन्द् समृद्धौ लट् ल॰प्र॰पु॰ब॰व॰।
5. देवताध्यारोपणविप्रतारणादसद्भूतसम्भावनोपहताः- देवतायाः अध्यारोपणम् इति ष॰ तत्पु॰। तदेव प्रतारणा इति कर्म॰। देवताध्यारोपणप्रतारणायाः सम्भूता या सम्भावना इति तृ॰तत्पु॰। तया उपहताः इति तृ॰तत्पु॰।
6. अन्तः प्रविष्टापरभुजद्वयम्-भुजयोः द्वयम् इति ष॰तत्पु॰। अपरं च तत् भुजद्वयं च इति कर्म॰। अन्तः प्रविष्टम् अपरभुजद्वयं यस्मिन् इति बहु॰। तम्।
7. आत्मबाहुयुगलम्-बाह्वोः युगलम् इति ष॰तत्पु॰। आत्मनः बाहुयुगलम् इति ष॰तत्पु॰।
8. सम्भावयन्ति-सम् √भू+णिच्+लट् ल॰प्र॰पु॰ब॰व॰।
9. त्वगन्तरिततृतीयलोचनम्- तृतीयञ्च लोकनञ्च इति कर्म॰। त्वचा अन्तरितमिति तृ॰तत्पु॰। त्वगन्तरितं तृतीयलोचनं यस्मिन् तम् इति बहु॰। स्वललाटं पद का विशेषण।
10. आशङ्कन्ते- आङ् √शङ्क शङ्कायाम् लट् ल॰प्र॰पु॰ब॰व॰।

विशेष - उत्प्रेक्षा अलंकार है।

दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति। आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति।

शब्दार्थ -

दर्शनप्रदानमपि=दर्शन देने को भी। अनुग्रहं=प्रसाद (कृपा)। गणयन्ति=मानते हैं। दृष्टिपातमपि=देखने को भी। उपकारपक्षे=उपकार की श्रेणी में। स्थापयन्ति=रखते हैं। सम्भाषणमपि=वार्तालाप को भी। संविभागमध्ये=पारितोषिक की कोटि में। कुर्वन्ति=मानते हैं। आज्ञामपि=आज्ञा को भी। वरप्रदानं=वरदान। मन्यन्ते=मानते हैं। स्पर्शमपि=छूने को भी। पावनं=पवित्र (करना)। आकलयन्ति=समझते हैं।

अनुवाद -

दर्शन देना भी कृपा करना समझते हैं (अर्थात् लोगों को अपना दर्शन दे देना वो उन पर बड़ा अनुग्रह करना समझते हैं)। आखों से देख भर लेने को भी उपकार की श्रेणी में रखते हैं। संलाप की भी द्रव्य-दान के बीच गणना करते हैं। अर्थात् बातचीत कर लेने भर को वे द्रव्य-दान समझते हैं। आज्ञा को भी वरदान देना मानते हैं। स्पर्श को भी पवित्र करने वाला समझते हैं।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

दर्शेति। लोकानां दर्शनप्रदानं स्वात्मप्रकटनमनुग्रहं प्रसादं गणयन्ति मन्यन्ते। दृष्टीति। दृष्टयाश्चक्षुषः पातमवलोकनं तदप्युपकारपक्ष उपकृतिपक्षे स्थापयन्ति निक्षिपन्ति। सम्भाषेति। सम्भाषणं जल्पनं तदपि सम्विभागः पारितोषिकं दानं तन्मध्ये कुर्वन्ति। पारितोषिकतुल्यं गणयन्तीत्यर्थः। आज्ञामिति। आज्ञामपि निदेशमपि वरप्रदानं समीहितप्रदानं मन्यन्ते जानन्ति। स्पर्शः संश्लेषस्तदपि पावनं पूतं पवित्रतामाकलयन्ति विचारयन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. दर्शनप्रदानम्-दर्शनस्य प्रदानं इति ष०तत्पु०।
2. अनुग्रहम्-अनु √ग्रह्+अच् द्वि०वि०ए०व०।
3. दृष्टिपातम्-दृष्टयाः पातम् इति ष०तत्पु०।
4. उपकारपक्षे- उपकारस्य पक्षः इति ष०तत्पु० तस्मिन्।
5. गणयन्ति- √गण् संख्याने लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
6. सम्भाषणम्- सम् √भाष्+ल्युट्।
7. संविभागमध्ये-संविभागस्य मध्ये इति ष०तत्पु०।
8. वरप्रदानम्- वरस्य प्रदानम् इति ष०तत्पु०।
9. मन्यन्ते- √मन् लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
10. स्पर्शम्- √स्पृश्+घञ् द्वि०वि०ए०व०।
11. पावनम्- √पू+णिच्+ल्युट् द्वि०वि०ए०व०।
12. स्थापयन्ति- √स्था णिच् लट् ल०प्र०पु०ब०व०।

13. सम्भाषणम्- सम् √भाष्+ल्युट् द्वि॰वि॰ए॰व॰।
14. आकलयन्ति- आ√कल् गतौ संख्याने च लट् ल॰प्र॰पु॰ब॰व॰।

विशेष - प्रतीयमान-उत्प्रेक्षा अलंकार है।

मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः। न पूजयन्ति द्विजातीन्। न मानयन्ति मान्यान्। नार्चयन्त्यर्चनीयान्। नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्। नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्।

शब्दार्थ -

मिथ्या=झूठी। माहात्म्य=महानता। (के) गर्व=घमण्ड (से)। निर्भराः=परिपूर्ण। देवताभ्यः=(विष्णु आदि) देवताओं को। न प्रणमन्ति=नमस्कार नहीं करते हैं। द्विजातीन्=ब्राह्मणों की। न पूजयन्ति=अर्चना नहीं करते हैं। मान्यान्=माननीयों (का)। न मानयन्ति=सत्कार नहीं करते हैं। अर्चनीयान्=पूजा करने योग्य व्यक्तयों की। नार्चयन्ति=पूजा नहीं करते हैं। अभिवादनार्हान्=अभिवादन (चरणस्पर्श आदि) करने योग्य जनों को। नाभिवादयन्ति=अभिवादन नहीं करते हैं। गुरून्=गुरुजनों के (सम्मान में)। नाभ्युत्तिष्ठन्ति=उठकर खड़े नहीं होते हैं।

अनुवाद -

झूठी महिमा के गर्व से परिपूर्ण (वे राजा) देवताओं को प्रणाम नहीं करते। ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते। माननीय व्यक्तियों का सम्मान नहीं करते। पूज्य लोगों की पूजा नहीं करते। अभिवादन करने योग्य व्यक्तियों का अभिवादन नहीं करते। गुरुजनों के सम्मान में उठकर खड़े नहीं होते हैं।

टिप्पणी -

तात्पर्य है कि धन के घमण्ड से इतने अभिमानी हो जाते हैं कि किसी का भी उचित प्रकार से सम्मान नहीं करते और इस प्रकार अपना ही नुकसान करते हैं। धर्मशास्त्र में कहा भी गया है-

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।" (मनु॰- 2.221)

अर्थात् गुरुजनों का नित्य अभिवादन करने वाले के आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं।

संस्कृत-टीका (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)-

मिथ्येति। मिथ्या वृथा यो माहात्म्यगर्वो माहात्म्याभिमानस्तेन निर्भरा धृता देवताभ्योऽर्हद्भ्यो न प्रणमन्ति नमस्कारं न कुर्वन्तीत्यर्थः। मान्यानिति। मान्यान्माननीयान्न मानयन्ति न सम्मानं ददते। नेति। अर्चनीयानर्चायोग्यान्नार्चयन्ति नार्चां कुर्वन्ति। नेति।

अभिवादनार्हानुपसङ्ग्रहयोग्यान्नाभिवादयन्ति न पादग्रहणं कुर्वन्ति। नेति। गुरून्हिताहितप्राप्तिपरिहारोपदेष्टातॄन् न अभ्युत्तिष्ठन्ति नाभ्युत्थानं कुर्वन्ति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः- महाश्चासौ आत्मा महात्मा तस्य भावः माहात्म्यम् (माहात्म्य+ष्यञ्)। मिथ्या माहात्म्यम् इति कर्म०। मिथ्यामाहात्म्यस्य गर्वः इति ष०तत्पु०। मिथ्यामाहात्म्यगर्वेण निर्भराः इति तृ०तत्पु०।
2. देवताभ्यः-देजता पद च०वि०ब०व०। प्र √नम् के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग।
3. मान्यान्- √मान् पूजायाम्+ण्यत् द्वि०वि०ब०व०।
4. अर्चनीयान्- √अर्च् पूजायाम्+अनीयर् द्वि०वि०ब०व०।
5. अभिवादनार्हान्- अभिवादनम् अर्हन्ति ये तान् इति बहु०। 'पादग्रहणमभिवादनम्'। (अमर०)।

'प्रणमन्ति' आदि सभी क्रियापद लट् ल०प्र०पु०ब०व० के प्रयोग हैं। उपसर्ग- और धातु क्रमशः इस प्रकार हैं- प्र√नम्, √पूज्, √मान्, √अर्च्, अभि √वद्+णिच्, अभि+उत् √स्था।

अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्। जरा वैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्। आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय। कुप्यन्ति हितवादिने।

शब्दार्थ -

अनर्थकः=निष्फल (निरर्थक)। आयास=प्रयास। अन्तरात=(वंचित) व्यवहित। विषयोपभोगसुखम्=विषयों के आस्वादन सुख। इति=इस प्रकार। विद्वज्जनम्=विद्वानों का। उपहसन्ति=उपहास करते हैं। जरा वैक्लव्यप्रलपितमिति=(जरा) बुढ़ापे की। वैक्लव्य=विकलता से (प्रलपितम्) बड़बड़ाहट है (इति) इस प्रकार। वृद्धजनोपदेशम्=वृद्धों के उपदेश को। पश्यन्ति=देखते हैं। आत्मप्रज्ञापरिभवः=(आत्म) अपनी (प्रज्ञा) बुद्धि का (परिभवः) तिरस्कार है। इति=इस प्रकार। सचिवोपदेशाय=मन्त्रियों की शिक्षा से। असूयन्ति=ईर्ष्या करते हैं। हितवादिने=कल्याणकारी बोलने वालों पर। कुप्यन्ति=क्रोध करते हैं।

अनुवाद -

'व्यर्थ का परिश्रम करके (ये) विषय-भोग के सुखों से वंचित रहते हैं' -इस प्रकार विद्वानों का उपहास करते हैं। 'बुढ़ापे की बेचैनी का प्रलाप है' इस प्रकार वृद्धों के उपदेश को देखते है। (समझते हैं)। 'हमारी बुद्धि का तिरस्कार है' इस प्रकार मन्त्रियों के परामर्श से ईर्ष्या करते हैं। हित की बात कहने वालों पर क्रोध करते हैं।

संस्कृत-टीका- (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)-

अनर्थकेति। अनर्थको निष्फलो य आयासः प्रयासः श्रौतस्मार्तकर्मणि क्लेशस्तेनान्तरितं व्यवहितमुपभोगोऽङ्गनादिकस्तज्जनितं सुखं सातं यस्येति कृत्वा विद्वज्जनं विबुधज्जनमुपहसन्त्युपहासं कुर्वन्ति। जरेति। जरा विस्रसा तस्यावैक्लव्यं विकलता तेन प्रलपितं जल्पितमिति कृत्वा वृद्धानां स्थविराणामुपदेशं शिक्षां पश्यन्ति। जानन्तीत्यर्थः। आत्मेति। आत्मनः स्वस्य याप्रज्ञा बुद्धिस्तस्याः परिभवः पराभव इति कृत्वा सचिवोपदेशाय प्रधानशिक्षाया असूयन्त्यसूयां कुर्वन्ति। हितेति। हितवादिने कुप्यन्ति कोपं कुर्वन्ति। सचिवोपदेशाय हितवादिने इति चतुर्थीद्वयमपि 'क्रुधद्रुह- 'इत्यादिना सम्प्रदानसंज्ञायां सत्यां ज्ञेयम्।

व्याकरणात्मक विशेषातायें -

1. अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम्- अनर्थकश्च आयासश्च इति कर्म॰। उपभोगस्य सुखमिति ष॰तत्पु॰। अनर्थकायासेन अन्तरितम् उपभोगसुखं येन तम् इति बहु॰।
2. विद्वज्जनम्-विद्वाँश्चासौ जनः इति कर्म॰तम्।
3. जरावैक्लव्यप्रलपितम्- जरसः वैक्लव्यं जरावैक्लव्यम् इति ष॰तत्पु॰ तेन प्रलपितमिति इति तृ॰तत्पु॰।
4. वृद्धजनोपदेशम्-वृद्धाश्च ते जनाश्च इति कर्म॰। तेषाम् उपदेशः इति ष॰तत्पु॰। तम्।
5. आत्मप्रज्ञापरिभवः- आत्मनः प्रज्ञा इति ष॰तत्पु॰। तस्याः परिभवः इति ष॰तत्पु॰।
6. असूयन्ति- √असूय् लट् ल॰प्र॰पु॰ब॰व॰।
7. सचिवोपदेशाय- सचिवानाम् उपदेशाः इति ष॰तत्पु॰। तस्मै। 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' (अष्टा॰ 1.4.37) से च॰वि॰ का प्रयोग।
8. कुप्यन्ति- √कुप् क्रोधे लट् ल॰प्र॰पु॰ब॰व॰।
9. हितवादिने- हितं वदति यः तस्मै। √वद्+णिनि च॰वि॰ए॰व॰।

सर्वथा तमभिनन्दन्ति तमालपन्ति तं पार्श्वे कुर्वन्ति तं सवर्द्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति तं मित्रताम् उपनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिर- धिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।

शब्दार्थ -

तम्=उस (मनुष्य) का। सर्वथा=सब प्रकार से। अभिनन्दन्ति=सत्कार करते

हैं। तम्=उससे। आलपन्ति=वार्तालाप करते हैं। तं=उसको। पार्श्वे=समीप में। कुर्वन्ति=रखते हैं। संवर्धयन्ति=बढ़ाते हैं (उन्नति कराते हैं)। तेन=उसके। सह=साथ। सुखम्=सुखपूर्वक। अवतिष्ठन्ते=बैठते हैं। तस्मै=उसके लिए। ददति=देते हैं। तं=उसकी। मित्रताम्=मित्रता को। उपनयन्ति=(दृढ़) स्थापित करते हैं। तस्य=उसके। वचनं=वचन को। शृण्वन्ति=सुनते हैं। तत्र=उस पर। वर्षन्ति=(धन की) वर्षा करते हैं। बहु=अधिक। मन्यन्ते=मानते हैं। आप्तताम्=प्रामाण्य (विश्वस्तता) को। आपादयन्ति=प्राप्त करते हैं। यः=जो। विगतान्यकर्त्तव्यः=दूसरे कर्त्तव्यों को छोड़कर। अहर्निशम्=दिन रात। अनवरतम्=लगातार। उपरचिताञ्जलिः=हाथ जोड़े हुए। अधिदैवतमिव=इष्ट देव के समान। स्तौति=स्तुति करता है। वा=अथवा। यो=जो। माहात्म्यम्=महिमा को। उद्भावयति=प्रकट करता है।

अनुवाद -

(वे राजा लोग) उस (व्यक्ति) का सब प्रकार से सत्कार करते हैं, उससे बातचीत करते हैं, उसको बगल में रखते हैं, उसे बढ़ाते हैं, उसके साथ सुखपूर्वक बैठते हैं, उसको देते हैं, उसके साथ मित्रता को प्राप्त करते हैं, उसके वचनों को सुनते हैं, उस पर वर्षा करते हैं, उसे बहुत मानते हैं (सम्मान करते हैं), उसकी विश्वस्तता को प्राप्त करते हैं, जो दिनरात निरन्तर दूसरे कर्त्तव्यों को छोड़े हुए, हाथ जोड़कर (उनकी) इष्टदेवता को समान स्तुति करता है अथवा जो महिमा को प्रकट करता है।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

एतादृशं पुरुषं सर्वथा स्तुवन्तीत्याशयेनाहतमिति। तं पुरुषं सर्वथा सर्वप्रकारेणाभिनन्दन्ति प्रशंसन्ति। तमालपन्त्यालापं कुर्वन्ति। तं पुरुषं पार्श्वे समीपे कुर्वन्ति रक्षन्ति। तं सम्वर्धयन्ति वृद्धिं प्रापयन्ति। तेनेति। तेन पुरुषेण सह सुखं यथा स्यात्तथावतिष्ठन्तेऽवस्थानं कुर्वन्ति। तस्मायिति। तस्मैपुरुषाय ददति प्रयच्छन्ति। तमिति। तं पुरुषं प्रति मित्रतां सुहृद्भावतामुपजनयन्ति निष्पादयन्ति। तस्येति। तस्य-पुरुषस्य वचनं वाक्यं शृण्वन्ति। तत्रेति। तस्मिन्पुंसि वर्षन्ति पुनः पुनः प्रदानं कुर्वन्ति तं पुरुषं बहु मन्यन्ते। अत्युत्कृष्टतया जानन्तीत्यर्थः। तमिति। तं प्रत्याप्ततां शिष्टतामापादयन्ति प्रतिपादयन्ति। तच्छब्दस्य यच्छब्दसापेक्षत्वाहदाह-य इति। यः पुमानहर्निशमहोरात्रं अनवरतं निरन्तरं विगतमन्यकर्त्तव्यं यस्यैवंभूत उपरचिताञ्जलिः संयोजित करपुटोऽधिदैवतमिवेष्टदेवतामिव स्तौति नवीति। यो वेति। यो माहात्म्यं तद्गुणवर्णना- लक्षणमुद्भावयत्युद्भावनां करोति।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अभिनन्दन्ति-अभि उप० √नन्द् समृद्धौ लट् ल०प्र०पु०ब०व०।

2. आलपन्ति-आ √लप् व्यक्तायां वाचि लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
3. सम्वर्द्धयन्ति- सम् √वृध् वृद्धौ णिच् लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
4. अवतिष्ठन्ते- अव √स्था गतिनिवृद्धौ लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
5. तस्मै ददति- √दा दाने लट् ल०प्र०पु०ब०व०। 'चतुर्थी सम्प्रदाने' (अष्टा० 2. 3.13) से √दा के योग में 'तस्मै' में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग है।
6. उपजनयन्ति- उप √जन् प्रादुर्भावो णिच् लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
7. आप्तताम्- √आप् लम्भने+क्त+तल्+टाप् द्वि०वि०ए०व०।
8. आपादयन्ति- आङ् √पद् गतौ णिच् लट् ल०प्र०पु०ब०व०।
9. अहर्निशम्- अहश्च- निशा च इति द्वन्द्व तत्पु०।
10. उपरचिताञ्जलिः- उपरचिता अञ्जलिः येन सः इति बहु०।
11. विगतान्यकर्त्तव्यः- विगतम् अन्यत् कर्त्तव्यं यस्य येन वा सः इति बहु०।

विशेष - अधिदैवतमिव में उपमा अलंकार है।

किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयःपुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः।

शब्दार्थ -

वा=अथवा। तेषां=उन (राजाओं) का। किं=क्या। साम्प्रतम्=उचित है। येषां=जिनका। अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं=('अति) बहुत अधिक (नृशंसप्राय) कठोरतापूर्ण (उपदेश) शिक्षा से (निर्घृणं) निर्दय (दयाशून्य)। कौटिल्यशास्त्रं=चाणक्यनीतिशास्त्र। प्रमाणम्=प्रमाण है। अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः= (अभिचार) (मारणोच्चाटन आदि) अभिचार (क्रिया) क्रियाओं से (एक) एकमात्र (नितान्त) (क्रूर) नृशंस (प्रकृतयः) प्रकृति वाले। पुरोधसो=पुरोहित। गुरवः=आचार्य हैं। पराभिसन्धानपरा=(पर) दूसरों को (अभिसन्धान) धोखा देने में (ठगने में) (परा) लीन (लगे हुए)। मन्त्रिण=सचिव। उपदेष्टारः=उपदेशक हैं। नरपतिसहस्रभुक्तो- ज्झितायां=(सहस्र) हजारों (नरपति) राजाओं द्वारा (भुक्त) भोगकर (उज्झिता) छोड़ी गयी। लक्ष्म्यां लक्ष्मी में (जिनकी) आसक्तिः= आसिक्त है। मारणात्मकेषु=संहारक। 'शास्त्रेषु=शास्त्रों में (जिनका)। अभियोगः=अभिनिवेश है। सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता=(सहज) स्वाभाविक (प्रेम) स्नेह (से) (आर्द्र) द्रवीभूत (हृदय) मन से (अनुरक्ता) प्रेम करने वाले। भ्रातर=भाई। (जिनके द्वारा) उच्छेद्याः=समूल नष्ट करने योग्य हैं।

अनुवाद -

अथवा उन (राजाओं) का क्या (कार्य) उचित है जिनका अत्यन्त नृशंसतापूर्ण उपदेश के कारण दयाशून्य चाणक्यनीतिशास्त्र प्रमाण है, अभिचार क्रियाओं से एकमात्र क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित जिनके गुरु हैं, दूसरों को धोखा देने में लीन रहने वाले मंत्री (जिनके) उपदेशक हैं, हजारों राजाओं द्वारा उपभोग करके त्यागी हुयी लक्ष्मी में जिनकी आसक्ति है, संहारक शास्त्रों में जिनका अभिनिवेश (व्यसन) है और स्वाभाविक स्नेह से द्रवीभूत हृदय से अनुराग करने वाले (सगे) भाई (जिनके लिए) समूल नष्ट करने योग्य हैं।

टिप्पणी -

प्रस्तुत अनुच्छेद में 'साम्प्रतं' शब्द का प्रयोग 'उचित' के अर्थ में हुआ है- 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' (अमर०) यहाँ पर कौटिल्य अर्थशास्त्र' नामक 'नीतिशास्त्र' को निर्घृण शास्त्र की संज्ञा दी गयी है। "गुप्तयुग में कौटिल्य शास्त्र का अत्यधिक प्रचार था। दण्डी ने उसका उल्लेख किया है और उसके कुछ सन्दर्भों का उद्धरण भी दिया है। कामन्दक नीति-शास्त्र उसी पर आधारित था। उसी युग में विरचित याज्ञवल्क्य-स्मृति में भी उसकी सामग्री से लाभ उठाया गया है।' (काद०सां०अ०, पृ० 128)। श्येनयाग आदि वैदिक कर्मानुष्ठान से या तंत्रोक्त विधि से मारण आदि के प्रयोग की क्रिया अभिचार क्रिया कहलाती है। प्राचीनकाल में मंत्रिमण्डल के दस मन्त्रियों में से एक को 'पुरोधस्' कहा जाता था। वह अथर्ववेद तथा अभिचार-क्रियाओं का पूर्ण ज्ञाता होता था। ऐसे व्यक्तियों के शिक्षक होने में बाण द्वारा अनास्था प्रकट की गयी है। जिन मंत्रियों का काम ही दूसरों को ठगना या धोखा देना हो, वे राजा को किसी हितकारी कार्य का परामर्श दे ही नहीं सकते। इस प्रकार के राजाओं के सभी कार्य अन्याय से युक्त होते हैं।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

विभूतिमतां पुनर्दोषान्तरमाह किं वेति। तेषां विभूतिमतां वाथवा किं सांप्रतं युक्तं येषां विभूतिमतामतिनृशंसप्रायोऽतिनिस्त्रिंशबहुल उपदेशः शिक्षा निर्गता घृणा दया यस्मादेतादृशं कौटिल्यशास्त्रं यामलादि प्रमाणमिति। अभिचारक्रिया कृत्याप्रतिकृत्यादिरूपक्रिया। क्रूरेति। क्रूरा मिस्त्रिंशैकद्वितीया प्रकृतिः स्वभावो येषामेवंविधाः पुरोधसः पुरोहिता गुरवो धर्मोपदेशकाः। परेषामितरेषामभिसन्धानं निरोधस्तत्र परास्तत्परा मन्त्रिणः सचिवा। उपदेष्टारः शिक्षादायकाः। नरेति। नरपतीनां यत्सहस्रं तेन भुक्ता चासावुज्झिता त्यक्ता चेति कर्मधारयः। एवंविधायां लक्ष्म्यामासाक्तिः प्रेमाधिक्यम्। मारणेति। मारणं व्यापादनं तदेवात्मा स्वरूपं येषां तथाविधेषु शस्त्रेष्वभियोग उद्यमः। सहेति। सहजं स्वाभाविकं यत्प्रेम तेनार्द्रं स्विन्नं हृदयं येषामत एवानुरक्ता

एतादृशा भ्रातरः सहोदरा उच्छेद्याः मूलतः उन्मूलनीयाः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्-निर्गता घृणा यस्मात् तत् इति अव्ययी०। अतिनृशंसप्रायेण उपदेशेन निर्घृणमिति तृ०तत्पु०। कौटिल्यशास्त्रं पद का विशेषण।
2. अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः- अभिचारस्य क्रिया इति ष०तत्पु०। अभिचारक्रियया क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते इति बहु०। पुरोधसः पद का विशेषण।
3. पराभिसन्धानपराः- परेषाम् अभिसन्धानम् इति ष०तत्पु०। तस्मिन् पराः इति स०तत्पु०। मन्त्रिणः पद का विशेषण।
4. उपदेष्टारः- उप √दिश्+तृच् प्र०वि०ब०व। मन्त्रिणः पद का विशेषण।
5. नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायाम्- नरपतीनां सहस्रम् इति ष०तत्पु०। पूर्वं भुक्ता पश्चात् उज्झिता इति कर्म०। नरपतिसहस्रेण भुक्तोज्झिता इति तृ०तत्पु०। तस्याम्। लक्ष्म्यां पद का विशेषण।
6. आसक्तिः आ √सञ्ज्+क्तिन् प्र०वि०ए०व०।
7. मारणात्मकेषु- मारणम् एव आत्मा येषां तेषु इति बहु०।
8. अभियोगः- अभि√युज् योगे संयमने+घञ् 'अभियोगस्त्वभिग्रहः' (अमर०) अर्थात् साग्रह प्रयत्न।
9. सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः- सहजं प्रेम इति सहजप्रेम इति कर्म०। सहजप्रेम्णा आर्द्रं हृदयम् इति तृ०तत्पु०। तेन अनुरक्ताः इति तृ०तत्पु०। भ्रातरः पद का विशेषण।
10. उच्छेद्याः- उत् √छिद्+यत् प्र०वि०ब०व०।

विशेष - समुच्चय अलंकार है।

तदेवंप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणेराज्यतन्त्रे, अस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने, कुमार! तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्न निन्द्यसे साधुभिर्न धिक्क्रियसे गुरुभिर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्न शोच्यसे विद्वभिः।

शब्दार्थ -

तत्=इस कारण। एवंप्राये=इस प्रकार के (पूर्वोक्त स्वरूप वाले)। सहस्र=हजारों। अतिकुटिल=अत्यन्त वक्र। कष्ट=दुखदायी । चेष्टा=क्रियाओं से। दारुणे=भीषण। राज्यतन्त्रे=शासन तन्त्र में। च=और। अस्मिन्=इस। महामोहान्धकारिणी=(महा) बहुत अधिक (मोह) अज्ञान से (अन्धकारिणी) अन्धा कर देने वाले अर्थात् विवेकशून्य बनाने वाले। यौवने=तारुण्य में। कुमार=हे चन्द्रापीड। तथा=उस प्रकार से। प्रयतेथा=प्रयत्न करना चाहिए। यथा=जिससे। जनैः=लोगों के द्वारा। (तुम) न

अनुवाद -

अथवा उन (राजाओं) का क्या (कार्य) उचित है जिनका अत्यन्त नृशंसतापूर्ण उपदेश के कारण दयाशून्य चाणक्यनीतिशास्त्र प्रमाण है, अभिचार क्रियाओं से एकमात्र क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित जिनके गुरु हैं, दूसरों को धोखा देने में लीन रहने वाले मंत्री (जिनके) उपदेशक हैं, हजारों राजाओं द्वारा उपभोग करके त्यागी हुयी लक्ष्मी में जिनकी आसक्ति है, संहारक शास्त्रों में जिनका अभिनिवेश (व्यसन) है और स्वाभाविक स्नेह से द्रवीभूत हृदय से अनुराग करने वाले (सगे) भाई (जिनके लिए) समूल नष्ट करने योग्य हैं।

टिप्पणी -

प्रस्तुत अनुच्छेद में 'साम्प्रतं' शब्द का प्रयोग 'उचित' के अर्थ में हुआ है- 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' (अमर०) यहाँ पर कौटिल्य अर्थशास्त्र' नामक 'नीतिशास्त्र' को निर्घृण शास्त्र की संज्ञा दी गयी है। "गुप्तयुग में कौटिल्य शास्त्र का अत्यधिक प्रचार था। दण्डी ने उसका उल्लेख किया है और उसके कुछ सन्दर्भों का उद्धरण भी दिया है। कामन्दक नीति-शास्त्र उसी पर आधारित था। उसी युग में विरचित याज्ञवल्क्य-स्मृति में भी उसकी सामग्री से लाभ उठाया गया है।' (काद०सां०अ०, पृ० 128)। श्येनयाग आदि वैदिक कर्मानुष्ठान से या तंत्रोक्त विधि से मारण आदि के प्रयोग की क्रिया अभिचार क्रिया कहलाती है। प्राचीनकाल में मंत्रिमण्डल के दस मन्त्रियों में से एक को 'पुरोधस्' कहा जाता था। वह अथर्ववेद तथा अभिचार-क्रियाओं का पूर्ण ज्ञाता होता था। ऐसे व्यक्तियों के शिक्षक होने में बाण द्वारा अनास्था प्रकट की गयी है। जिन मंत्रियों का काम ही दूसरों को ठगना या धोखा देना हो, वे राजा को किसी हितकारी कार्य का परामर्श दे ही नहीं सकते। इस प्रकार के राजाओं के सभी कार्य अन्याय से युक्त होते हैं।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

विभूतिमतां पुनर्दोषान्तरमाह किं वेति। तेषां विभूतिमतां वाथवा किं सांप्रतं युक्तं येषां विभूतिमतामतिनृशंसप्रायोऽतिनिस्त्रिंशबहुल उपदेशः शिक्षा निर्गता घृणा दया यस्मादेतादृशं कौटिल्यशास्त्रं यामलादि प्रमाणमिति। अभिचारक्रिया कृत्याप्रतिकृत्यादिरूपक्रिया। क्रूरेति। क्रूरा मिस्त्रिंशैकद्वितीया प्रकृतिः स्वभावो येषामेवंविधाः पुरोधसः पुरोहिता गुरवो धर्मोपदेशकाः। परेषामितरेषामभिसन्धानं निरोधस्तत्र परास्तत्परा मन्त्रिणः सचिवा। उपदेष्टारः शिक्षादायकाः। नरेति। नरपतीनां यत्सहस्रं तेन भुक्ता चासावुज्झिता त्यक्ता चेति कर्मधारयः। एवंविधायां लक्ष्म्यामासाक्तिः प्रेमाधिक्यम्। मारणेति। मारणं व्यापादनं तदेवात्मा स्वरूपं येषां तथाविधेषु शस्त्रेष्वभियोग उद्यमः। सहेति। सहजं स्वाभाविकं यत्प्रेम तेनार्द्रं स्विन्नं हृदयं येषामत एवानुरक्ता

एतादृशा भ्रातरः सहोदरा उच्छेद्याः मूलतः उन्मूलनीयाः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्-निर्गता घृणा यस्मात् तत् इति अव्ययी०। अतिनृशंसप्रायेण उपदेशेन निर्घृणमिति तृ०तत्पु०। कौटिल्यशास्त्रं पद का विशेषण।
2. अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः- अभिचारस्य क्रिया इति ष०तत्पु०। अभिचारक्रियया क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते इति बहु०। पुरोधसः पद का विशेषण।
3. पराभिसन्धानपराः- परेषाम् अभिसन्धानम् इति ष०तत्पु०। तस्मिन् पराः इति स०तत्पु०। मन्त्रिणः पद का विशेषण।
4. उपदेष्टारः- उप √दिश्+तृच् प्र०वि०ब०व। मन्त्रिणः पद का विशेषण।
5. नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायाम्- नरपतीनां सहस्रम् इति ष०तत्पु०। पूर्वं भुक्ता पश्चात् उज्झिता इति कर्म०। नरपतिसहस्रेण भुक्तोज्झिता इति तृ०तत्पु०। तस्याम्। लक्ष्म्यां पद का विशेषण।
6. आसक्तिः आ √सञ्ज्+क्तिन् प्र०वि०ए०व०।
7. मारणात्मकेषु- मारणम् एव आत्मा येषां तेषु इति बहु०।
8. अभियोगः- अभि√युज् योगे संयमने+घञ् 'अभियोगस्त्वभिग्रहः' (अमर०) अर्थात् साग्रह प्रयत्न।
9. सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः- सहजं प्रेम इति सहजप्रेम इति कर्म०। सहजप्रेम्णा आर्द्रं हृदयम् इति तृ०तत्पु०। तेन अनुरक्ताः इति तृ०तत्पु०। भ्रातरः पद का विशेषण।
10. उच्छेद्याः- उत् √छिद्+यत् प्र०वि०ब०व०।

विशेष - समुच्चय अलंकार है।

तदेवंप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणेराज्यतन्त्रे, अस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने, कुमार! तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्न निन्द्यसे साधुभिर्न धिक्क्रियसे गुरुभिर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्न शोच्यसे विद्वद्भिः।

शब्दार्थ -

तत्=इस कारण। एवंप्राये=इस प्रकार के (पूर्वोक्त स्वरूप वाले)। सहस्र=हजारों। अतिकुटिल=अत्यन्त वक्र। कष्ट=दुखदायी । चेष्टा=क्रियाओं से। दारुणे=भीषण। राज्यतन्त्रे=शासन तन्त्र में। च=और। अस्मिन्=इस। महामोहान्धकारिणी=(महा) बहुत अधिक (मोह) अज्ञान से (अन्धकारिणी) अन्धा कर देने वाले अर्थात् विवेकशून्य बनाने वाले। यौवने=तारुण्य में। कुमार=हे चन्द्रापीड। तथा=उस प्रकार से। प्रयतेथा=प्रयत्न करना चाहिए। यथा=जिससे। जनैः=लोगों के द्वारा। (तुम) न

उपहस्यसे=उपहास का विषय न बनाये जाओ। साधुभिः=सज्जनों के द्वारा। न निन्द्यसे=निन्दित न किये जाओ। गुरुभिः=आचार्यों के द्वारा। न धिक्क्रियसे=धिक्कारे न जाओ। सुहृद्भिः=मित्रों के द्वारा। न उपालभ्यसे=उपालम्भ (उलाहनों) के विषय न बनाये जाओ। विद्वद्भिः=विद्वानों के द्वारा। न शोच्यसे=शोक के विषय न बनाये जाओ।

अनुवाद -

इसलिए हे चन्द्रापीड। ऐसे हजारों अत्यंत कुटिल एवं कष्टदायक क्रियाओं से भयंकर शासन-तन्त्र (राज-काज) में और भारी मोह के कारण विवेकहीन बनाने वाले इस यौवन में ऐसा प्रयत्न करो जिससे लोग तुम्हारा उपहास न करें, सज्जन पुरुष निन्दा न करें, गुरुजन न धिक्कारें, मित्र उलाहना न दें, (और) विद्वान शोक न करें।

टिप्पणी -

प्रस्तुत अनुच्छेद में 'नोपहस्यसे जनैः' आदि में क्रियापद कर्मवाच्य के अनुसार हैं, परन्तु हिन्दी अनुवाद में कर्तृवाच्य के अनुसार ही प्रयोग उचित एवं सुविधाजनक प्रतीत होता है। यहाँ शुकनास के कहने का तात्पर्य यह है कि राज्यलक्ष्मी एवं यौवन के होने पर भी अपने व्यवहार को हर प्रकार से संतुलित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

प्रकृतमुपसंहरन्नाह- तदेवमिति। तदितिहेत्वर्थे एवम्प्राये पूर्वोक्तस्वरूपबहुले। अतीति। अतिकुटिला अतिवक्राः कष्टदायिन्याश्चेष्टाः कायव्यापारास्तासां सहस्रं तेन दारुणे भीषणे। राज्यतन्त्र इति। राज्यस्य तन्त्रं इतिकर्त्तव्यता। 'इतिकर्त्तव्यता तन्त्रे' इत्यनेकार्थः। अस्मिन्ननुभूयमाने यौवने तारुण्ये च महामोहकारिणि महामौढयजनके। कुमारेति सम्बोधनं। तथेति। तेनैव प्रकारेण प्रयतेथाः प्रयत्नं कृथाः। यथा येन प्रकारेण कर्मैर्लोकैर्भवांस्त्वं नोपहस्यसे न उपहासविषयीक्रियसे। साधुभिः सज्जनैर्न निन्द्यसे न निन्दाविषयीक्रियसे। गुरुभिर्धर्माचार्यैर्न धिक्क्रियसे न धिग्जीवितभित्यादिवाक्यगोचरीक्रियसे सुहृद्भिर्मित्रैर्नोपालभ्यसे नोपालम्भविषयीक्रियसे। विद्वद्भिः पण्डितैर्न शोच्यसे न शोकविषयीक्रियसे।

व्याकरणातमक विशेषतायें -

1. अतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे- अतिशयेन कुटिलः इति कर्म०। कष्टानां चेष्टानां सहस्रम् इति ष०तत्पु०। अतिकुटिलेन कष्टचेष्टासहस्रेण दारुणे इति तृ०तत्पु०। 'राज्यतन्त्रे' का विशेषण।
2. राज्यतन्त्रे-राज्यस्य तन्त्रे इति ष०तत्पु०।

3. महामोहान्धकारिणि- महाश्चासौ मोहश्च इति कर्म०। महामोहेन अन्धं कर्तुं शीलं यस्य इति बहु० तस्मिन्। 'यौवने' पद का विशेषण।
4. प्रयतेथाः - प्र √यत् विधिलिङ्ग म०पु०ए०व०।
5. उपहस्यसे- उप √हस्+यक् लट् ल०म०पु०ए०व०।
6. निन्द्यसे- √निन्द्+यक् लट् ल०म०पु०ए०व०।
7. धिक्क्रियसे- √धिक्+डुकृञ्+यक् लट् ल०म०पु०ए०व०।
8. उपालभ्यसे- उप+आङ् √लभ्+यक् लट् ल०म०पु०ए०व०।
9. शोच्यसे- √शुच् शोके+यक् लट् ल०म०पु०ए०व०।

यथा च न प्रकाश्यसे विटैर्न प्रहस्यसे कुशलैर्नास्वाद्यसे भुजङ्गैर्नावलुप्यसे सेवकवृकैर्न वञ्चयसे धूर्तैर्न प्रलोभ्यसे वनिताभिर्न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या न नर्त्य से मदेन नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन नाक्षिप्यसे विषयैर्नावकृष्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन।

शब्दार्थ -

च=और। यथा=जिस प्रकार। विटैः=कामुकजनों के द्वारा। न प्रकाश्यसे=प्रकाशित न किये जाओ। कुशलैः=चतुर लोगों द्वारा। न प्रहस्यसे=उपहास का विषय न बनाये जाओ। भुजङ्गैः=लम्पटों द्वारा (वेश्याओं में आसक्त रहने वाले)। नास्वाद्यसे=उपभोग न किये जाओ। सेवकवृकैः=सेवक रूपी भेड़ियों के द्वारा। नावलुप्यसे=नष्ट न कर दिये जाओ। धूर्तैः=धूर्तों के द्वारा। न वञ्चयसे=न ठगे जाओ। वनिताभिः=कामिनियों द्वारा। न प्रलोभ्यसे=न लुभाये जाओ। लक्ष्म्या=लक्ष्मी के द्वारा। न विडम्ब्यसे=विडम्बना के पात्र न बनो। मदेन=अभिमान के द्वारा। न नर्त्यसे=न नचाये जाओ। मदनेन=कामदेव के द्वारा। नोन्मत्तीक्रियसे=उन्मत्त न बनाये जाओ। विषयैः=विषय भोगों द्वारा। नाक्षिप्यसे=विक्षिप्त न किये जाओ। रागेण=आसक्ति के द्वारा। नावकृष्यसे=खींचे न जाओ (आकृष्ट न किये जाओ)। सुखेन=सुख द्वारा (आनन्द द्वारा)। नापह्रियसे=न त्यागे जाओ।

अनुवाद -

और जिससे (तुम्हें) कामुकजन प्रकाशित न करें (अर्थात् अपने जैसा न बतायें), चतुर लोग हँसी न उड़ायें, (वेश्या के साथ) लम्पट (तुम्हार।) उपभोग न करें, सेवक रूपी भेड़िये नष्ट न कर दें, धूर्त लोग ठग न लें, कामिनियाँ लुभान लें। लक्ष्मी विडम्बना का पात्र न बना ले, अभिमान न नचाये, कामदेव उन्मत्त न बनाये, विषय भोग विक्षिप्त न कर दें, आसक्ति आकृष्ट न कर ले और आनन्द छोड़ न दें।

टिप्पणी -

वेश्याओं को आश्रय देने वाले लोग 'भुजङ्ग' कहलाते हैं और वेश्याओं के माध्यम से धनी लोगों और राजाओं का धन हड़प लेते हैं इसलिए उनसे सतर्क रहने को कहा गया है। विटजनों द्वारा प्रकाशित किये जाने का भाव यह है कि जो राजा इस प्रकार के लोगों की संगति में रहते हैं उन्हें वही लोग प्रजा के समक्ष एवं आपत्तिकाल में 'तुम भी तो ऐसे ही हो' इस प्रकार कहकर लज्जित करते हैं। ऐसा अवसर ही नहीं आने देना चाहिए। 'विट' अर्थात् असत् आचरण करने वाले अथवा कामुक पुरुष। योग्य प्रजापालक न होने पर चतुर लोग उपहास करते हैं अतः इस राज्यतंत्र में योजनाबद्ध रूप से कार्य किया जाना चाहिए जिससे कुशलजन हँसी न उड़ायें। जिस प्रकार भेड़िया छिपकर अपना शिकार करता है उसी तरह धूर्त लोग सेवक के रूप में छिपकर धन का अपहरण न कर लें इस प्रकार कार्य करना चाहिए।

संस्कृत-टीका- (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

यथा विटैरसदाचरणकारिभिर्न प्रकाश्यसे न प्रकटीक्रियसे। कुशलैरनाचारादिभिर्न प्रतार्यसे न प्रतारणविषयीक्रियसे भुजङ्गैर्गणिका-पतिभिर्नास्वाद्यसे गणिकार्थं द्रव्यवितरणद्वारा नोपभोज्यसे। सेवकाः सपर्याकारिण एव वृका इहामृगास्तैर्नावलुप्यसे नानिष्टे प्रसज्यसे। नाकुलीक्रियसे इत्यर्थः। धूर्तैः शठैर्न वञ्चयसे न प्रतार्यसे। वनिताभिः स्त्रीभिर्न प्रलोभ्यसे न प्रलोभनविषयः क्रियसे। लक्ष्म्या श्रिया न विडम्ब्यसे न विडम्बनायुक्तः क्रियसे। न परित्यज्यसे इत्यर्थः। मदेनाधिपत्यजनिताहङ्कारेण न नर्त्यसे न नृत्यं कार्यसे। मदनेन मनोभवेन न उन्मत्तीक्रियसे न चित्तविप्लवतामापद्यसे। विषयैरिन्द्रियार्थैर्नाक्षिप्यसे न प्रेर्यसे। रागेण स्नेहादिना न विकृष्यसे नाकृष्यसे। सुखेन सातेन नापह्रियसे न परित्यज्यसे।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. प्रकाश्यसे- प्र√काश् दीप्तौ+यक् लट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।
2. प्रतार्यसे- प्र √तृ णिच् यक् लट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।
3. कुशलैः- कुशल पद तृ॰वि॰ब॰व॰। कहीं-कहीं 'अकुशलैः' पाठ मिलता है, परन्तु वहाँ पर अर्थ समीचीन नहीं बनता।
4. सेवकवृकैः- सेवकाः एव वृकाः इति कर्म॰। तैः।
5. अवलुप्यसे- अव √लुप् विमोहने+यक् लट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।
6. इसी प्रकार √वञ्च्+यक्, आङ् √क्षिप्+यक्, अव √कृष्+यक् तथा अप √हृ+यक् आदि से वञ्चयसे, आक्षिप्यसे, अवकृष्यसे तथा अपह्रियसे आदि रूप बने हैं लट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।

कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः। पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः। तरलहृदयमप्रतिबुद्धञ्च मदयन्ति धनानि तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्।

शब्दार्थ -

कामं=यद्यपि। भवान्=आप। प्रकृत्या=स्वभाव से। एव=ही। धीरः=धैर्यशाली (हैं)। च=और। पित्रा=पिता के द्वारा। महता=अत्यन्त। प्रयत्नेन=प्रयास से। समारोपित-संस्कारः=सुसंस्कृत (संस्कारयुक्त) किये गये हो। धनानि=सम्पत्तियां। तरलहृदयम्=चञ्चल मन वाले। च=और। अप्रतिबुद्धम्=अजागरूक को। मदयन्ति=उन्मत्त करती हैं। तथापि=फिर भी (उपदेश की आवश्यकता न होते हुए भी)। भवद्गुणसन्तोषो=(भवद्) आपके (गुण) गुणों से (उत्पन्न) (सन्तोषो) सन्तुष्टि ने। माम्=मुझ (शुकनास) को। एवं=इतना (इस प्रकार का)। मुखरीकृतवान्=वाचाल (बोलने वाला) कर दिया।

अनुवाद -

यद्यपि आप स्वभाव से ही धैर्यशाली हैं। और पिता ने महान प्रयत्न से तुममें संस्कार डाले हैं। सम्पत्तियां चञ्चल मन वाले और अजागरूक व्यक्ति को ही उन्मत्त बनाती हैं। फिर भी आपके गुणों से उत्पन्न सन्तोष ने ही मुझे इस प्रकार वाचाल (अधिक बोलने के लिए प्रेरित) कर दिया।

टिप्पणी -

हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार गर्भाधान आदि सोलह संस्कार मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक परिष्कार के लिए किये जाते हैं। पराशर स्मृति में इनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रियानिष्क्रमणोऽन्नप्राशनवपनक्रिया॥
कर्णवेध्ये व्रतादेशे वेदारम्भक्रियाविधिः।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहौ।
चिताग्निसङ्ग्रहश्चैव संस्काराः षोडशः स्मृताः॥

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

काममत्यर्थं सकलशास्त्रवेत्तृभिः शिक्षिते त्वय्युपदेशो व्यर्थं इत्यर्थः। पुनराह-प्रकृत्येति। प्रकृत्या स्वभावेन धीरो धैर्यवान्। यद्यपीति पूरणीयम्। कीदृक्। पित्रा चेति पित्रा चकारान्मयापि समारोपिता विहिताः संस्कारा जातकर्मादयः। अथ च तत्तद्गुणाविशेषाश्च यस्यैवम्भूतः। अथवान्यदप्याह-तरलेति। तरलं चञ्चलं हृदयं चेतो यस्य स तमप्रतिबुद्धं बोधरहितं च पुरुषं धनानि द्रव्याणि मदयन्ति मदं जनयन्ति। अहं तु न

तथानुनयामीति। येनोपदेशः सार्थकः स्यादिति तदभिप्रायमाशङ्कयोत्तरमाहतथापीति। अनुपदेश्यत्वेऽपि भवद्गुणः शौर्यादिभिर्यः सन्तोषो मनसंस्तुष्टिर्मां शुकनासमेवं पूर्वोक्तप्रकारेण मुखरीकृतवांस्तादृग्वाग्व्यापारे प्रवर्तितवान्।

व्याकरणात्मक विशेषतायें-

1. धीरः- धी+ √रा+क प्र॰वि॰ए॰व॰।
2. समारोपितसंस्कारः- सम्यक् आरोपितः इति कर्म॰ (समारोपितः) समारोपितः संस्कारः यस्मिन् सः इति बहु॰।
3. तरलहृदयम्- तरलं हृदयं यस्य सः इति बहु॰ (तम्)।
4. अप्रतिबुद्धम्- नं प्रतिबुद्धः इति नञ् तत्पु॰। (प्रति √बुध्+क्त) तम्।
5. मदयन्ति- √मद् लट् ल॰प्र॰पु॰ब॰व॰।
6. भवद्गुणसन्तोषः- भवतः गुणाः इति ष॰तत्पु॰। तैः सन्तोषः इति तृ॰तत्पु॰।
7. मुखरीकृतवान्- मुखर+च्वि √कृ+क्तवतु प्र॰वि॰ए॰व॰।

इदमेव च पुनःपुनरभिधीयसे- विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति।

शब्दार्थ-

च=और। पुनः पुनः= बार-बार। इदमेव=यही। अभिधीयसे=कहे जाते हो। इयं=यह (पूर्वोक्त स्वरूप वाली)। दुर्विनीता=दुष्टा। लक्ष्मी=लक्ष्मी। विद्वांसमपि=विद्वान को भी। सचेतनमपि=ज्ञानयुक्त को भी। महासत्त्वमपि=अत्यन्त शक्तिशाली को भी, अभिजातमपि=उच्चकुलोत्पन्न को भी, धीरमपि=धैर्यशाली को भी। प्रयत्नवन्तमपि=उद्योगशील (परिश्रमी) को भी। नरं=मनुष्य को। खलीकरोति=दुष्ट बना देती है।

अनुवाद -

और बार-बार तुमसे यही कहा जाता है कि यह दुराचारिणी लक्ष्मी विद्वान, विवेकी, महाबलशाली, कुलीन, धैर्यवान और प्रयत्नशील पुरुष को भी दुर्जन बना देती है।

संस्कृत-टीका- (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

इयं पूर्वोक्तं पुनः पुनर्वारंवारमधिधीयसे कथ्यसे। अहार्यशङ्कामुद्घाटयति-विद्वांसमिति। विद्वांसमपिपण्डितमपि सचेतनमपि ज्ञानवन्तमपि महासत्त्वमपि महासाहसमप्यभिजातमपि कुलीनमपि धीरमपि धैर्यवन्तमपि प्रयत्नवन्तमप्युद्योगयुक्तमपि पुरुष लक्ष्मीः श्रीः खलीकरोति सन्मार्गात्स्खलनां

प्रापयति। अत्र सर्वत्रापिशब्दः कैमुतिकन्यायपरः अयमप्येवं करोति। अन्यस्य का वार्तेत्यर्थः। तत्र हेतुमाहयत इयं दुर्विनीता। अपगतविनयेत्यर्थः।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. अभिधीयसे-अभि √धा+यक् लट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।
2. अभिजातम्- अभि √जन्+क्त द्वि॰वि॰ए॰व॰।
3. प्रयत्नवन्तम्- प्र √यत्+मतुप् द्वि॰वि॰ए॰व॰।
4. दुर्विनीता- दुष्टं विनयं यस्याः सा इति बहु॰ दुर्+वि √नी+क्त+टाप्।
5. खलीकरोति-, खल+च्वि √कृ लट् ल॰प्र॰पु॰ए॰व॰।

सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि उन्नमय बन्धुवर्गम्।

शब्दार्थ -

भवान्=आप्। पित्रा=पिता के द्वारा। सर्वथा=सब प्रकार के। कल्याणै=मंगलाचारों से। क्रियमाणम्=किये जाते हुए। नव=नये। यौवराज्याभिषेकमङ्गलम्=यौवराज्याभिषेक के मंगल (कल्याण) को। अनुभवतु=अनुभव करें। कुलक्रमागताम्=वंश परम्परा से प्राप्त। पूर्वपुरुषैरूढां=पूर्वजों के द्वारा धारण किये जाते हुए। धुरम्=राज्यभार को। उद्वह=धारण करो। द्विषतां=शत्रुओं के। शिरांसि=सिरों को। अवनमय=झुकाओ। बन्धुवर्गम्=बन्धुवर्ग को। उन्नमय=उन्नत करो।

अनुवाद -

आप पिता के द्वारा सब प्रकार के मंगल कार्यों से किये जाते हुए नये यौवराज्याभिषेक के मंगल का अनुभव करें। वंश परम्परा से प्राप्त, पूर्वजों के द्वारा धारण किये जाते हुए राज्यभार को धारण करें। शत्रुओं के सिरों को झुकायें और बन्धुवर्ग की उन्नति करें।

संस्कृत-टीका- (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

भवांस्त्वं पित्रा जनकेन कल्याणैर्मङ्गलैः क्रियमाणं विधीयमानं नवयौवनस्य यो राज्याभिषेकस्तल्लक्षणं यन्मङ्गलं श्रेयोऽनुभवत्वनुभवविषयीकरोतु। पूर्वपुरुषैरूढां कुलक्रमागतां परम्परायातां धुरं राज्यभारमुद्वहोद्वहनं कुरु। अवेति। द्विषतां शत्रूणां शिरांस्युत्तमाङ्गान्यवनमय नम्राणि कुरु। स्वबन्धुवर्गं स्वजनसमुदायमुन्नमयोर्ध्वीकुरु।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. क्रियमाणम्- √कृ+यक्+शानच् द्वि॰वि॰ए॰व॰।

2. नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्- यौवराज्याय अभिषेकः इति यौवराज्याभिषेकः इति च॰तत्पु॰। नवो योयौवराज्याभिषेकः इति क॰धा॰। स एव मङ्गलं इति क॰धा॰। तत्।
3. कुलक्रमागताम्- कुलस्य क्रमः इति ष॰तत्पु॰। कुलक्रमात् आगतम् इति पं॰ तत्पु॰। ताम्। धूः पद का विशेषण।
4. उद्वह- उत् उप॰ √वह् लोट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।
5. पूर्वपुरुषैः- पूर्वे च ते पुरुषाः पूर्वपुरुषाः इति क॰धा॰। तैः।
6. ऊढाम्- √वह्+क्त+टाप् द्वि॰वि॰ए॰व॰। धूः पद का विशेषण।
7. अनुभवतु- अनु √भू लोट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।
8. अवनमय- अव √नम्+णिच्+लोट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।
9. शिरांसि-शिरस् द्वि॰वि॰ब॰व॰।
10. उन्नमय-उत् √नम् लोट् ल॰म॰पु॰ए॰व॰।

अभिषेकानन्तरं च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्।

शब्दार्थ -

च=और। अभिषेकानन्तरं=अभिषेक के पश्चात्। प्रारब्धदिग्विजयः=प्रारम्भ की हुयी दिग्विजय वाले (तुम)। तव=अपने। पित्रा=पिता द्वारा। विजितामपि=जीती हुयी भी। परिभ्रमन्= घूमते हुए। सप्तद्वीपभूषणां=सात द्वीपों रूपी आभूषणों वाली। वसुन्धराम्=पृथ्वी को। पुनर्विजयस्व=फिर से जीतो।

अनुवाद -

और अभिषेक के पश्चात् दिग्विजय आरम्भ किये हुए घूमते हुए अपने पिता द्वारा जीती हुयी भी सात द्वीपों रूपी आभूषणों वाली पृथ्वी को फिर से स्वाधीन करो (विजित करो अथवा जीतो)।

संस्कृत-टीका- (भा॰च॰सि॰च॰ टीका)

अभीति। अभिषेकानन्तरं यौवराज्याभिषेकादनु। प्रारब्धेति। प्रारब्धः प्रस्तुतो दिग्विजयो येन सः परिभ्रमन्प्रतिदिशं दिशं दिशं प्रतिगच्छंस्तव पित्रा च त्वज्जनकेन विजितामपि स्वायत्तीकृतामपि सप्तद्वीपभूषणं सप्तसङ्ख्याका द्वीपा जम्बूप्रभृतयो भूषणं यस्या एवंविधा वसुन्धरां पुनर्द्वितीयवारं विजयस्व स्वायत्तीकुरु। यमिति।

व्याकरणात्मक-विशेषतायें -

1. अभिषेकानन्तरं-अभिषेकस्य अनन्तरं इति ष॰तत्पु॰।
2. प्रारब्धदिग्विजयः- दिशां विजयः इति दिग्विजयः इति ष॰तत्पु॰। प्रारब्धः

दिग्विजयः येन सः इति बहु०।

3. परिभ्रमन्- परि √भ्रम् शतृ प्र०वि०ए०व०।

4. सप्तद्वीपभूषणाम्-सप्तानां द्वीपानां समाहारः इति द्विगु स०। सप्तद्वीपाः भूषणानि यस्याः इति बहु०। ताम्।

सात द्वीपों के नाम हैं-

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः।।

5. विजयस्व- वि √जि लोट् ल०म०पु०ए०व०।

6. वसुन्धराम्- वसूनि धारयति इति वसुन्धरा, ताम्। द्वि०वि०ए०व०।

अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवतीत्येतावदभिधायोपशशाम।

शब्दार्थ -

ते=तुम्हारा। अयं=यह। कालः=समय। प्रतापं=तेज को। आरोपयितुम्=दिखाने का है। हि=क्योंकि। आरूढप्रतापः=प्रतापी। राजा=राजा। त्रैलोक्यदर्शीव=त्रिलोकीद्रष्टा योगी के सामान। सिद्धादेशः=निष्पन्न आदेश वाला। भवति=होता है। एतावत्=इतना। अभिधाय=कहकर। उपशशाम=शान्त हो गया।

अनुवाद -

और यह तुम्हारा प्रताप स्थापित करने (या फैलाने) का समय है। क्योंकि प्रतापवान् राजा त्रिलोकदर्शी (योगी) के समान सिद्धादेश (अव्याहत आज्ञा वाला) होता है। इतना कहकर (शुकनास) चुप हो गया।

टिप्पणी -

प्रताप जमाने का तात्पर्य है कि युवराज को राज्यलक्ष्मी वंश परम्परा से प्राप्त हुयी है। पिता के द्वारा जीती गयी पृथ्वी पर शासन करने से अधीनस्थ राजा उतना सम्मान नहीं करेंगे जितना कि स्वयं के पराक्रम से जीतने पर। इसलिए दिग्विजय के माध्यम से सम्पूर्ण प्रजा एवं अधीनस्थ राजाओं पर प्रभाव जमाने का उपदेश दिया गया है। सिद्धादेश का तात्पर्य है कि जिस प्रकार त्रिलोकदर्शी योगी भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता होते हैं और उनके द्वारा कही गयी बात किसी भी परिस्थिति में अवश्य पूर्ण होती है। उसी प्रकार प्रतापी राजा का सभी इतना आदर करते हैं कि उसके द्वारा दी गयी आज्ञा, कहते ही पूर्ण हो जाती है।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

प्रतापं कोशदण्डजं तेन आरोपयितुं लब्धास्पदं कर्तुं ते तवायं कालः समयः। समागत इति शेषः। तस्य फलं प्रदर्शयन्नाह-आरूढेति। आरूढो

लब्धास्पदः प्रतापो यस्यैवम्भूतो राजा त्रैलोक्यदर्शीव योगीव सिद्धो निष्पन्न आदेश आज्ञा यस्य स तथा त्रिकालदर्श्यपि सिद्धादेशो भवति। यथा वदति तथैव भवतीत्यर्थः। इतीति। इति परिसमाप्तावेतावन्मात्रमभिधायोक्त्वोपशशाम विरतवाग्व्यापारो बभूव।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. आरोपयितुम्-आङ् √रुह्+णिच् (पुक्)+तुमुन्।
2. आरूढप्रतापः- आरूढः प्रतापः यस्य सः इति बहु०।
3. सिद्धादेशः- सिद्धः आदेशः यस्य सः इति बहु०।
4. त्रैलोक्यदर्शीव-त्रयाणां लोकानां दर्शी इति ष०तत्पु० (√दृश्+णिनि) प्र०वि०ए०व०।
5. अभिधाय अभि √धा+ल्यप्।
6. उपशशाम- उप √शम् लिट् ल०प्र०पु०ए०व०।

विशेष - त्रैलोक्यदर्शीव में उपमा अलंकार है।

उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरमलाभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित एव प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

शब्दार्थ -

शुकनासे=शुकनास के। उपशान्तवचसि=चुप हो जाने पर। चन्द्रापीड=चन्द्रापीड। ताभिः=उन। अमलाभिः स्वच्छ। उपदेशवाग्भिः=उपदेश वचनों से। प्रक्षालित इव=धुला हुआ सा। उन्मीलित इव=विकसित हुआ सा या जागा हुआ सा। स्वच्छीकृत इव=स्वच्छ किया हुआ सा। निर्मृष्ट इव=माँजा हुआ सा। अभिषिक्त इव=नहाया हुआ सा। अभिलिप्त इव=(चन्दन आदि से) लिपा हुआ सा। अलङ्कृत इव=सजाया हुआ सा। पवित्रीकृत इव=पवित्र किया हुआ सा। उद्भासित इव=चमकाया हुआ सा। प्रीतहृदयो=प्रसन्नचित्त हुआ। मुहूर्तं=कुछ देर (दो घड़ी)। स्थित्वा=रुककर। स्वभवनम्=अपने भवन में। आजगाम=आ गया।

अनुवाद -

शुकनास के चुप हो जाने पर चन्द्रापीड उन स्वच्छ उपदेश वचनों से धुला हुआ सा, विकसित हुआ सा (या जागा हुआ सा), स्वच्छ किया हुआ सा, माँजा हुआ सा, नहाया हुआ सा, लिपा हुआ सा, सजा हुआ सा, पवित्र किया हुआ सा, चमकता हुआ सा प्रसन्नचित्त (होकर) कुछ देर रुककर अपने भवन में आ गया।

संस्कृत-टीका- (भा०च०सि०च० टीका)

उपेति। उपशान्तवचस्युपरतवाग्व्यापारे तस्मिञ्शुकनासे सति

चन्द्रापीडस्ताभिः पूर्वोक्ताभिरुपदेशवाग्भिः शिक्षावचनैः प्रक्षालित इव धौत इव, उन्मीलित इव विकसित इव, स्वच्छीकृत इव स्वच्छतां प्रापित इव, निर्मृष्ट इव मसृणीकृत इव, अभिषिक्त इव स्नापित इव, अभिलिप्त इव प्रलिप्त इव, अलङ्कृत इव भूषित इव, पवित्रीकृत इव पावनीकृत इव उद्भासित इवोद्दीप्त इव। प्रीतेति। प्रीतं सन्तुष्टं हृदयं चेतो यस्येवम्भूतो मूहूर्तं घटिकाद्वय स्थित्वावस्थानं कृत्वा स्वभवनं निजसद्न्माजगामाययौ।

व्याकरणात्मक विशेषतायें -

1. उपशान्तवचसि-उपशान्तं वचः यस्य सः इति बहु॰। तस्मिन्। शुकानासे पद का विशेषण।
2. उपदेशवाग्भिः- उपदेशस्य वाग्भिः इति ष॰तत्पु॰।
3. प्रक्षालितः- प्र√क्षल् शौचकर्मणि+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
4. उन्मीलितः- उत् √मील् निमेषणे+क्त॰ प्र॰वि॰ए॰व॰।
5. स्वच्छीकृतः- स्वच्छ-च्वि √कृ+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
6. निर्मष्टः- निर् √मृज् शुद्धौ+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
7. अभिषिक्तः- अभि √सिच् क्षरणे+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
8. अभिलिप्तः- अभि √लिप् उपदेहे+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
9. अलङ्कृतः- अलम् √कृ+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
10. पवित्रीकृतः- पवित्र+च्वि √कृ+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
11. उद्भासितः- उत् √भस् भर्त्स्नदीप्त्योः+क्त प्र॰वि॰ए॰व॰।
12. आजगाम- आ √गम् लिट् ल॰ प्र॰पु॰ए॰व॰।
13. प्रीतहृदयः- प्रीतं हृदयं यस्य सः इति बहु॰।

परिशिष्ट

शुकनासोपदेश में सूक्तियाँ

1. निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्।
2. अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमद:।
3. अनञ्जनवर्तिसाध्यं ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्।
4. अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा।
5. अमूलमन्त्रशम्य विषमो विषयविषास्वादमोह:।
6. अस्नानशौचवध्यो: बलवान् रागमलावलेप:।
7. अक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसन्निपातनिद्रा भवति।
8. यौवनारम्भे च प्राय: शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धि:।
9. इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमतिदुरन्तेयम् उपभोगमृगतृष्णिका।
10. नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तक: पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।
11. अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणा:।
12. कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम्।
13. अकारणञ्च भवति दुष्प्रकृतेरन्वय: श्रुतं वा विनयस्य।
14. गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्।
15. प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्।
16. अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृति:।
17. अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि।
18. राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मी:।
19. नह्येवं विधमपरम् अपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या लक्ष्मी:।
20. गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुदचञ्चला।
21. आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति।
22. लतेव लक्ष्मीर्विटपकानमध्यारोहति।
23. लक्ष्मीरियं सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति जनम्।
24. परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती लक्ष्मी: प्रकटयति जगति निज चरितम्।
25. तरलहृदयमप्रतिबुद्धञ्च मदयन्ति धनानि।

सहायक-ग्रन्थ

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण-कादम्बरी: एक सांस्कृतिक अध्ययन। चौखम्भा विद्याभवन। वाराणसी। द्वि॰सं॰, 2026.
2. उपाध्याय, बलदेव- संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, 1978 ई॰ सन्।
3. कीथ, ए॰बी॰ - संस्कृत साहित्य का इतिहास। अनु॰ मंगलदेव शास्त्री। मोतीलाल बनारसीदास। वाराणसी, 1967 पुनर्मुद्रण 1986 ई॰ सन्।
4. झा, तारिणीश - शुकनासोपदेश। रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, 1967 ई॰ सन्।
5. नारंग, सुदेश - शुकनासोपदेश। भारतीय विद्या प्रकाशन, आई.यू.बी. जवाहर नगर, बैंग्लो रोड, दिल्ली-110007
6. पाण्डेय, अमरनाथ - बाणभट्ट का आदान-प्रदान। शब्दलोक प्रकाशन, वाराणसी, 1967.
7. पाण्डेय, अमरनाथ - बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन। भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी-दिल्ली, 1974.
8. पाण्डेय, चन्द्रशेखर तथा नानूराम व्यास - संस्कृत साहित्य की रूपरेखा। साहित्य निकेतन, कानपुर, 1982.
9. प्रह्लादकुमार - शुकनासोपदेश। मेहरचन्द लक्ष्मनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1988.
10. रणदेव तथा थापन, महेन्द्र-गद्यकार बाण। पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन। जालन्धर, 1967.
11. सक्सेना, रमा- शुकनासोपदेश। भारतीय शोध संस्थान, इन्दौर, 1952.

अन्य छात्रोपयोगी ग्रन्थ

संस्कृतपाठ्यसंकलन	डॉ. शशि तिवारी
दूतवाक्यम्	डॉ. शशि तिवारी
केनोपनिषद् (भूमिका और व्याख्या)	डॉ. शशि तिवारी
राष्ट्रीयता एवं भारतीय साहित्य	डॉ. शशि तिवारी
गीता विमर्श	डॉ. शशि तिवारी
पञ्चतन्त्रम् (अपरीक्षितकारकम्)	डॉ. पुष्पा गुप्ता
मुण्डकोपनिषद्	डॉ. जियालाल कम्बोज
उत्कीर्णलेखस्तबकः	डॉ. जियालाल कम्बोज
सौन्दरनन्दमहाकाव्यम्	डॉ. जियालाल कम्बोज
संस्कृत निबन्धाञ्जलिः	डॉ. सावित्री गुप्ता
किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग)	डॉ. सावित्री गुप्ता
किरातार्जुनीयम् (1-2 सर्ग)	डॉ. सावित्री गुप्ता
छन्दोऽलङ्कारसौरभम्	डॉ. सावित्री गुप्ता
प्रतिमानाटकम्	डॉ. सावित्री गुप्ता
नीतिशतकम्	डॉ. सावित्री गुप्ता
मनुस्मृतिः (द्वितीय अध्याय)	डॉ. राकेश शास्त्री
मनुस्मृतिः (सप्तम अध्याय)	डॉ. राकेश शास्त्री
नाट्यशास्त्रम् (1,2,6 अध्याय)	प्रो. ब्रजमोहन च[illegible]
ईशावास्योपनिषद्	डॉ. शर्मिष्ठा शर्मा
लघुसिद्धान्तकौमुदी	डॉ. रमण कुमार शर्मा
शुकनासोपदेशः	डॉ. अर्चना [illegible]
पञ्चतन्त्रम् (लब्धप्रणाशम्)	डॉ. कमलेश [illegible]
वैदिकसूक्तमञ्जरी	डॉ. कामिनी तनेजा
आधुनिक संस्कृत साहित्य संचयन	डॉ. गिरीशचन्द्र पंत
मन्दारमञ्जरी	डॉ. युद्धवीर सिंह
संस्कृत-भाषा-नैपुण्यम्	डॉ. कान्ता भाटिया
रघुवंशमहाकाव्यम् (द्वितीयः सर्गः)	डॉ. निशा गोयल

VIDYANIDHI PRAKASHAN
D-10/1061, (Near Shri Mahagauri Mandir)
Khajuri Khas, Delhi-110094
M. : 09868912570, 09868351990
email : vidyanidhiprakashan@hotmail.com